प्रकाशक :
मंत्री
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा
२०१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

प्रथम संस्करण दिसम्बर १६४५, २००० प्रति
द्वितीय संस्करण जून १६४६, २००० प्रति
मूल्य ।) चार आने

मुद्रक :
नवरतनमल सुराना
सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
४०२, अपर चितपुर रोड
कलकत्ता।

अशान्त विश्व को शान्ति का सन्देश

प्रदाता—

श्रीमद् तुलसीरामजी महाराज

नवमाचार्य्य

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय

[विक्रम संवत् २००१, आषाढ़ कृ० ४ के दिन सरदारशहर (बीकानेर) में दिये धर्म-प्रवचन से प्रस्तुत]

भूमिका

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के पूज्यपाद आचार्य्येवर श्रीमद् तुलसीरामजी महाराज द्वारा अशान्त विश्व को दिया हुआ शान्ति का यह शुभ सन्देश प्रकाशित करते हमें परम हर्ष होता है। यह सन्देश सरदारशहर (बीकानेर) में ता० २६-६-१६४५ के दिन दिया गया था, परन्तु कई कारणों से उसे प्रकट करने में विलम्ब हुआ; हमें इसका खेद है।

फरवरी सन्, १६४५ ई० में विश्व-धर्म-सम्मेलन लन्दन की ओर से एक पत्र प्राप्त हुआ। यद्यपि यह पत्र अक्टूबर १, सन् १६४४ को भेजा गया था फिर भी यह फरवरी महीने में ही मिला। यह सभा के सभापति श्रीयुत छोगमलजी चोपड़ा के नाम आया था और वे कलकत्ते में मौजूद न थे इसलिए वह वहाँ से लौटकर गङ्गाशहर पहुचा। वहाँ पहुंचने पर गत जून महीने में श्रीयुत शुभकरणजी दशाणी ने वह पत्र पूज्य आचार्य्य महाराज के सन्मुख निवेदित किया और उस समय प्रायः दो हजार जन-मनुष्यों के बीच पूज्यपाद महाराज ने विश्व-शान्तिके विषय पर एक महत्वपूर्ण धर्म-प्रवचन दिया। यह शान्ति-प्रवचन करीब एक घण्टे तक दिया गया। इस प्रवचन के आधार से ही यह शान्ति-सन्देश तैयार किया गया है।

अपनी जाति और अपने देश के प्रति एकाङ्गीण देशभक्ति राग है। दूसरी जातियों, देश एवं राष्ट्रोंके हक और उनकी सुख-सुविधाके प्रति एकान्त उदासीनता द्वेष है। केवल अपनी-अपनी ही उन्नति और सत्ता की सोचने और दूसरों के पीड़न, त्रास या शोषण का जरा भी ख्याल न रखने से ही आज इस भीषण युद्ध का ताण्डव हुआ है।

राग और द्वेष के भावों से प्रस्फुटित हुई क्रोध, मान, माया और लोभ की वृत्तियाँ बहुत ही भीषण रूप में प्रकट हुई हैं और उनका भीषण परिणाम भी आज दुनिया को भोगना पड़ रहा है। आज से करीब पौने तीन हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर ने यह घोषणा की थी :—

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेई, लोभो सव्वविणासणो ॥

अर्थात्; "क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सर्वनाश करता है।"

आज कौन अस्वीकार करेगा कि जातियाँ, देश और राष्ट्र सर्वस्व विनाश के किनारे खड़े हैं? उस समय भगवान् महावीर ने कहा था :—

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायमज्जवभावेण, लोभं संतोसओ जिणे ॥

अर्थात् "शान्तिसे क्रोधको जीतो, नम्रता से अभिमानको जीतो, सरलता से माया को जीतो और सन्तोप से लोभ को"। शान्ति, सन्तोष, आर्जव और मार्दव आज भी दुनिया के लिये पदार्थ पाठ स्वरूप हैं।

जैनियों के लिए वर्ष में एक दिन ऐसा होता है, जिस दिन ये गत एक वर्ष में जान और अनजान में हुए अपराधों के लिये क्षमा माँगते हैं। वे कहते हैं :—

खामेमि सव्वे जीवे सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झं न केणई ॥

अर्थात् "मैं समस्त जीवोंसे क्षमा मांगता हूं और सब जीव मुझे भी क्षमा दान दें। सर्व जीवों के साथ मेरी मैत्री वृत्ति है; किसी के भी साथ मेरा वैर नहीं है।"

विश्वमें भीषण संग्राम मचाने वाले राष्ट्र आज अपराधी के रूपमें है। सबको मिलकर जैनियों की तरह आज परस्पर क्षमा याचना का दिवस मनाना चाहिए और किये हुए पापों से अपनी राष्ट्रिय आत्मा को शुद्ध करते हुए उच्चारण करना चाहिए :—

जं जं मणेण बद्धं जं जं वायाए भासिअं पावं।
जं जं काएण कयं मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥

अर्थात् "हमने जो जो पाप मनसे संकल्पित किये हैं, वाणीसे बोले हैं और शरीरसे किये हैं, वे हमारे सब पाप मिथ्या हो जायँ"।

युद्ध से मुक्त होने के बाद जब चिर-शान्ति की समस्याएँ दौड़ रही हैं, उस समय वैर की भावना को भुला देना ही उत्तम है। क्योंकि जो वैर की भावना का पोषण करता है, वह अपने प्रति वैर की भावना को ही बढ़ाता है :—

"हणन्तं णाऽणुजाणाइ वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥"

वैर से वैर की शान्ति नहीं होती, अवैर से वैर जीता जाता है यह बात याद रखने की है।

मिथिला अधिपति नमी राजर्षि जब भव प्रपंच से निकल नगर, परिजन और अन्तःपुर को त्याग कर संन्यासी होने के लिए तैयार हुए, उस समय एक ब्राह्मण ने उनसे कहा :—

"हे नृपति! आप अपना क्षात्र तेज दिखलायें। आप उन सब राजाओं को अपने आधीन कर दीक्षित हों, जो अभी तक पराधीन नहीं हुए।" उस समय नमी राजर्षि ने उत्तर दिया—'जो संग्राम में लाखों, सहस्रों शत्रुओं को जीतता है, उसकी अपेक्षा वह योद्धा बड़ा है, जो अपनी आत्मा को जीतता है। अपने ही साथ युद्ध करना चाहिए। बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने से क्या मतलब? जो अपनी आत्मा द्वारा अपनी आत्माको जीतता है, वही सुखी होता है। नहीं जीती हुई आत्मा ही दुर्जय शत्रु है। जो इसको जीत लेता है, वह इसके साथ क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार कषाय रूपी शत्रुओं को भी जीत लेता है और इन चारों के जीत लेने पर वह अपनी पाँच इन्द्रियों पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। इस तरह एक को जीतने वाला सबको विजित करता है।"

आज भोगासक्त देशों और राष्ट्रों के प्रत्येक नागरिक के हृदय में यही भावना भर देने की जरूरत है; तभी विश्व में स्थायी शान्ति की नींव कायम हो सकती है। मानव—मानव को शत्रु न समझ कर आत्मिक शत्रुओं को ही शत्रु समझें, तो आत्मिक शान्ति के साथ-साथ विश्व-शान्ति की भी स्थायी नींव पड़े।

विश्व-शान्ति का सन्देश प्रकारान्तर से इन्हीं जैन सिद्धान्तों की प्रभावशाली उद्घोषणा है। आज दुनिया को अहिंसा के अमृत-पान से ही शान्ति प्राप्त हो सकती है।

इस शुभ शान्ति सन्देश में ऐसे ही विश्व शान्ति के अचूक उपायों का निर्देश है। हम आशा करते हैं कि यह सन्देश विश्व-शान्ति के कार्य-क्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करनेमें लगे सभी विचारक लोगों का ध्यान आकर्षित करेगा और उनके लिए यह मार्ग प्रदर्शक होगा।

जो पूज्य आचार्य्य महाराज से परिचित नहीं हैं, उनकी जानकारीके लिए संक्षेप में हम बतला देना चाहते हैं कि आचार्य्य महाराज केवल २२ वर्ष की अवस्था में ही शासनारूढ़ किये गये थे। उनका शासन अभिषेक सन् १९३६ में हुआ था। उनकी दीक्षा केवल ११ वर्ष की अवस्थामें हुई थी। उनके पूर्ववर्ती आचार्य्य श्रीमद् कालूरामजी महाराज जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय के अष्टम आचार्य्य थे; आप नवम आचार्य्य हैं। अभी आपकी अवस्था केवल ३१ वर्ष की ही है; फिर भी आपका पाण्डित्य बडा गहन एवं गम्भीर है। आप जैन दर्शन एवं धर्म के ही नहीं, अपितु अन्य दर्शनों के भी उच्च कोटि के विद्वान हैं। आप एक महान कवि, दार्शनिक और तत्व-वेत्ता हैं और संस्कृत, प्राकृत और मारवाड़ी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान हैं। आप के धर्म प्रवचनों में एक नवीन आध्यात्मिक शान्ति और स्फूर्ति रहती है। आप की रचनाएँ बड़ी कवित्वपूर्ण एवं नवीन विचार शैली से अभिप्रेत रहती हैं। आपके शासनाधीन ६२७ साधु-साध्वियाँ हैं, जो आत्मिक उन्नति और अभ्युत्थान के लिए सतत् प्रयत्नशील हैं। इस तरह आप एक बहुत बड़े संघ के नायक हैं। आपके संघ का अनुशासन देखने से भारतके समृद्धि-काल के सम्राटों की शासन-प्रणाली का जीता-जागता दृश्य आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है; अतः आपको धर्म चक्रवर्त्ती कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। जैनों के जितने भी सम्प्रदाय हैं उनमें एक आचार्य्य के अनुशासन में ६२७ साधु-साध्वियाँ आप ही के सङ्घ में हैं।

हम इस सन्देश के साथ-साथ विश्व-धर्म सम्मेलन से प्राप्त पत्र और तदन्तर्गत त्रिधर्म घोषणा को भी प्रकाशित कर देते हैं, जिससे पाठकगण विश्व शान्तिके लिए बतायी रूपरेखाओं को इस सन्देश में बताये गये ९ सार्वभौम सिद्धान्तों के साथ तुलना कर सकें।

विश्व-शान्ति का यह सन्देश जगत् के लिए मङ्गलमय हो।

श्रीचन्द रामपुरिया
अ० मंत्री
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

२०१, हरीसन रोड, कलकत्ता
ता० २३-११-४५

विश्व-धर्म-सम्मेलन से प्राप्त पत्र की नकल :

विश्व-धर्म-सम्मेलन

लन्दन, १ अक्टूबर, १९४४

श्रीमान् छोगमलजी चोपड़ा

प्रिय महाशय,

सर्वत्र यह भावना दृढ़तर होती जा रही है कि जबतक मानवीय गतिविधिका सञ्चालन उन नैतिक नियमोंके आधारपर नहीं होता, जो कि सामान्यतया संसारके समस्त धर्मोंमें मान्य एवं सन्निहित हैं, तबतक संसारमें वास्तविक एवं चिरस्थायी शान्तिकी स्थापना नहीं हो सकती है। युद्धके समाप्त होनेपर जब राजनीतिज्ञ-गण मानव जातिकी भावी शासन व्यवस्थाकी रूपरेखाका निर्माण करेंगे, तब विश्वके धर्माचार्यों और आध्यात्मिक चेतना-सम्पन्न नर-नारियोंका यह कर्त्तव्य हो जायगा कि वे अपनी वाणीको जन साधारण तक पहुँचावें।

सन् १९४३ के अक्टूबरमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिकामें प्राय: १४० * प्रोटेस्टेण्ट, केथोलिक और यहूदी सम्प्रदायके अधिकारी प्रवक्ताओं द्वारा विश्व शान्तिपर एक विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी। उक्त त्रिधर्म विज्ञप्तिमें निम्नलिखित सात सिद्धान्त घोषित किये गये हैं—

(१) संसारकी सत्ताका व्यवस्थापन नैतिक नियमोंके द्वारा हो।

(२) व्यक्तियोंके स्वत्व सुरक्षित रहें।

(३) दलित, निर्बल और वर्णवाली जातियोंके स्वत्वोंकी रक्षा की जाय।

(४) अल्प-संख्यक जातियोंके अधिकार सुरक्षित रहें।

---

* जिनमें प्रमुख ये भी थे, मोनसियर जार्ज जोनसन (नेशनल केथोलिक वेलफेयर काउन्सिल) रेभरेण्ड सेम्युअल केभर्ट (प्रधान मन्त्री-फेडरल कौंसिल ऑफ दी चर्चेज आफ क्राइस्ट इन अमेरिका) और डाक्टर लुइस फिन्केलस्टीन (अध्यक्ष-ज्यूइश थियोलोजिकल सेमिनरी)।

(५) न्यायपूर्ण शान्तिको कायम रखनेके लिये अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ संगठित की जांय।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोगको प्रसारित किया जाय।

(७) प्रत्येक राष्ट्रमें न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था उपलब्ध हो।

कुछ महीनोंके पश्चात् सन् १९४४ के मई महीनेमें प्रोटेस्टेन्ट, कैथोलिक और यहूदी सम्प्रदायोंको प्रतिनिधि सस्था, ब्रिटेनको कौंसिल आफ क्रिश्चियन्स एण्ड ज्यूजने उपरोक्त घोषणाका स्वागत करते हुए एव तत्रान्तर्गत सिद्धान्तोंके प्रति समर्थनात्मक भाव प्रदर्शित करते हुए एक विज्ञप्ति प्रकाशित की।*

विश्व-धर्म-सम्मेलनमें—जिसका मुख्य उद्देश्य धर्मके माध्यमसे भ्रातृत्वकी भावनाका प्रसार और वैयक्तिक, राष्ट्रीय एवं धार्मिक विचार स्वातन्त्र्यको अक्षुण्ण रखते हुए विश्व प्रेमकी भावनाको जागृत करना है, समस्त जीवित धर्मोंके अनुयायो सम्मिलित हैं। भिन्न-भिन्न मतोंके अनुयायियोंकी एक समिति† द्वारा इस सभाको आमन्त्रण प्राप्त हुआ है कि उपरोक्त घोषणा संसारके समस्त धार्मिक प्रमुखोंको अवगत करायी जाय।

विश्व-धर्म-सम्मेलन ऐसी महत्वपूर्ण प्रेरणाका स्वागत करते हुए दोनों विज्ञप्तियोंको आपकी सेवामें प्रेषित करनेका साहस करते हुए सादर अनुरोधके साथ यह जिज्ञासा करता है, आप इनमें अभिव्यक्त सिद्धान्तोंके प्रति किस प्रकार अपना बहुमूल्य समर्थन प्रदान कर सकेंगे। सर्व साधारणकी यह एक महान् सेवा होगी, यदि आप अपने समस्त अधिकृत साधनों द्वारा इन विज्ञप्तियोंकी तरफ अपने सम्प्रदायके अन्य सदस्योंका ध्यान आकर्षित करते हुए उनकी अभिरुचि एव समर्थन प्राप्त कर पायेंगे।

---

* इस कौन्सिलके सभापति ये महानुभाव हैं,—हिज ग्रेस दी लॉर्ड आर्कबिशॉप ऑफ केन्टरबरी, हिज ग्रेस दी ऑर्कबिशॉप ऑफ वेस्टमिनिस्टर, दी राइट रेभरेण्ड दी मॉडरेटर ऑफ दी फ्री चर्च फेडरल कौन्सिल और दी भेरो रेभरेण्ड दी चीफ राब्बी।

† इस समितिके निम्नलिखित सदस्य हैं :—दी राइट रेभरेण्ड दी लॉर्ड विशप ऑफ साइसेस्टर, दी राइट आनरेबल दी अर्ल आफ पर्थ (भूतपूर्व प्रधान मंत्री-लीग आफ नेशन्स) दी राइट आनरेबल भाईकाउन्ट सेम्युएल (भूतपूर्व गृहमंत्री), सर एस० रंगनाधन (हाई- कमिश्नर आफ इण्डिया), एम० मोर्डन अल-अरब (सेक्रेटरी ऑफ दी रॉयल इजिप्शियन एम्बेसी, लदन) और बेरोन ई० पामस्टोर्ना (भूतपूर्व स्वेडिश वैदेशिक मंत्री)।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि संसारके राजनीतिज्ञोंके पथ-प्रदर्शनके लिये एक ऐसे विश्व-मतको जागृत करना अत्यावश्यक है जिसके द्वारा भविष्यके नैतिक साधनोंको निश्चित करनेका महान् कार्य्य सम्पन्न होगा।

इस प्रयत्नको अग्रसर करनेके लिये क्या हम आशा करें कि आपके सहयोग, सहायता और सत्परामर्श हमें प्राप्त हो सकेंगे।

विश्व-धर्म-सम्मेलनके लिये—

(अंग्रेजी हस्ताक्षर) ई० पामस्टीर्ना

विश्व-शान्ति पर त्रिधर्म-घोषणा

अक्टूबर ७ सन् १९४३ (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका)

ईसाइयोंके प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायकी घोषणा।

पुनः-पुनः होनेवाले युद्धसे आक्रान्त आजका निराशप्राय जगत् धार्मिक शक्तियोंकी तरफ नेतृत्वके लिये तृषित दृष्टिसे देख रहा है। प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदायके उपासना-केन्द्र इस अभ्यर्थनाके प्रति जागरूक होकर यह प्रदर्शित करनेके लिये उद्यत हुए हैं कि उनके धर्मकी क्रियात्मक आचार प्रवृत्तियाँ किस प्रकार विभिन्न राष्ट्रोंके पारस्परिक सबन्धोंका पथ-प्रदर्शन कर सकती हैं। उनके निष्कर्ष विभिन्न धर्मावलम्बियोंकी धार्मिक मान्यताओं एवं परम्पराओंसे विभिन्न होते हुए भी अनेक महत्वपूर्ण विषयोंमें सामञ्जस्यमूलक हैं और ऐसा होनेसे हम अत्यन्त प्रसन्न भी हैं क्योंकि संसारकी सुव्यवस्था बिना समस्त सद्भावना प्रेरित व्यक्तियोंके सहयोगके प्राप्त भी नहीं हो सकती है। अतः हम अपने स्थानीय और अन्य समस्त सहधर्मियोंसे अनुरोध करते हैं कि वे निम्नांकित सिद्धान्तोंके प्रति पूर्ण ध्यान दें, जो प्रोटेस्टेन्ट, यहूदी और कैथोलिकों द्वारा सम्मिलित रूपसे निर्दिष्ट किये गये हैं और यदि न्यायपूर्ण और चिरस्थायी शान्तिकी स्थापना अभीष्ट है तो ये सिद्धान्त राजनैतिक नीतियोंमें अवश्यतः मान्य होने चाहिये। इन सिद्धान्तोंके स्पष्टीकरणके अतिरिक्त हमारा यह भी विश्वास है कि विश्व-शान्तिकी मूल-भित्तिका स्थिरीकरण करनेके लिये ईसामसीह द्वारा प्रवक्त सिद्धान्तोंके अनुसार आध्यात्मिक जागृतिको पुनः प्रचारित एवं जाग्रत किया जाय।

केथोलिक-घोषणा :

सद्भावनासे प्रेरित समस्त व्यक्तियोंके समक्ष विचारार्थ हम न्यायपूर्ण शान्तिकी निम्नांकित रूपरेखायें उपस्थित करते हैं जो नैतिक विधानके सिद्धान्तोंके प्रतीक होनेके साथ-साथ आजकी संसारकी सम्पूर्ण समस्याओंकी प्रमुख समाधान-स्वरूपा भी हैं। हमारे मतानुसार समस्त मानव जातिके कल्याणार्थ ये निर्दिष्ट रूपरेखायें एक क्रिश्चियनके लिये अल्पतम त्यागकी अपेक्षा रखती हैं । इन्हीं मूल-भित्तियोंके आधारपर केथोलिक धर्मानुयायीगण ईसाई धर्मके न्याय और दयाकी सद्भावनासे प्रेरित होकर स्वतन्त्र विश्वमें एक महत्तर सामाजिक व्यवस्थाके निर्माणके लिये कार्यान्वित हो सकते हैं ।

यहूदी-घोषणा :

अमेरिकन सिनागोग निम्नांकित सिद्धान्तोंको अपने स्वस्थानीय धर्मानुयायियों एव इस धर्मके अन्य समस्त माननेवालोंके विचारार्थ उपस्थित करती है जो कि आजके ससारकी गंभीर समस्याओंको हल करनेवाले विचारों और क्रियाओंके लिये मार्ग प्रदर्शन रूप होंगे । ये सात सिद्धान्त यद्यपि सामाजिक सम्बन्ध व्यवस्थाके प्रति यहूदी धर्मकी निर्दिष्ट नीतिकी सर्वाङ्गीण अभिव्यक्ति नहीं है, फिर भी यहूदी धर्मकी दोनों बाइबिलीकल और रेब्बिनिकल शिक्षाओं द्वारा मान्य अवश्य हैं । ईश्वरीय सत्ता द्वारा ससारका अभ्युत्थान करना ही यहूदी धर्मका सर्वोच्च लक्ष्य रहा है । इसलिये सीनागोग अपने समस्त समर्थकोंसे —नागरिकोंके रूपमें तथा यहूदियोंके रुपमें अनुरोध करता है कि वे इन सिद्धान्तोंको कार्य-रूपमें परिणत करनेके लिये अग्रसर हों। इस प्रकार अवश्य ही वे यहूदी धर्मके नैतिक आदर्शोंके अनुसार कार्य करेंगे और साथ-साथ इस प्रकार देश और समस्त मानव-जातिकी सर्वतोमुखी श्रेष्ठ सेवा भी कर सकेंगे ।

केथोलिकों, यहूदियों और प्रोटेस्टेन्टोंकी विश्व-शान्तिके प्रति घोषणा :

(१) संसारकी व्यवस्था नतिक नियमोंके आधारपर हो । न्यायपूर्ण शान्तिका सस्थापन इस सत्यकी क्रियात्मक स्वीकृतिपर निर्भर है कि केवल व्यक्तियोंकी ही नहीं अपितु समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय सघोंकी व्यवस्था भी ईश्वरीय-सार्वभौमिक सत्ता और ईश्वर प्रणीत नैतिक नियमोंके आधीन है ।

(२) व्यक्तिगत स्वत्व आश्वासित रहें। अर्थात् मानव ईश्वरकी प्रतिमा है इस तथ्यको समस्त आवश्यक रूपोंमें मानव अधिकारोंकी अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा में अभिव्यक्त किया जाय और संसार की समस्त राष्ट्रीय शासन व्यवस्थायें तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं निश्चयात्मक कार्यों से इसे अपनावें। इन अधिकारोंकी अवहेलनाके रूपमें यदि जातीय, धार्मिक और अन्य वैषम्य उपस्थित हों तो समस्त राष्ट्र और व्यक्ति उसकी भर्त्सना करें।

(३) दलित, निर्बल और वर्णवाले व्यक्तियोंके स्वत्व सुरक्षित रहें। अर्थात् छोटी और बड़ी समस्त जातियोंके हितोंको यदि वे सुसंगठित विश्व समाजके हितानुकूल हों तो सामूहिक सुरक्षाके ढांचेमें सुरक्षित रखना चाहिये। राजनैतिक उत्तरदायित्वके प्रति अनुन्नत, दलित और वर्णवाले व्यक्तियोंके उत्थानका अन्तर्राष्ट्रीय उद्देश्य हो।

(४) अल्पसंख्यक जातियोंके स्वत्व सुरक्षित रहें। अर्थात् राष्ट्रीय शासन व्यवस्थायें और अन्तर्राष्ट्रीय संघ धार्मिक और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकोंको आर्थिक आजीविका, शिक्षा प्राप्ति करनेके लिये समान साधन तथा सुविधाएं और राजनैतिक समानता तथा सांस्कृतिक विकासके हितोंकी रक्षाके प्रति प्रामाणिक आश्वासन दें।

(५) न्यायपर अवलम्बित शान्तिकी रक्षाके निमित्त अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें स्थापित करनी होंगी। अर्थात चिर शान्तिके लिये यह आवश्यक है कि ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्थायें स्थापित हों जो (१) अन्तर्राष्ट्रीय विधानके लिये एक समिति नियोजित करें। (२) अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वोंकी न्यायपूर्ण पूर्तिका आश्वासन दिया जाय और आवश्यकतानुसार उनमें संशोधन भी किया जाय। (३) सामूहिक शान्तिके विश्वासको प्रतिष्ठित करनेके लिये शस्त्रास्त्रोंपर सतत प्रतिबन्ध और नियन्त्रण रहे और कठोर प्रतिबन्धोंके द्वारा विवादग्रस्त प्रश्नोंका निर्णय और समाधान अनिवार्य रूपसे हो। आवश्यकतानुसार कानूनके प्रयोगके लिये समुचित साधनोंको व्यवहृत किया जाय।

(६) अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोगको प्रसारित किया जाय। अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोगके द्वारा समस्त राष्ट्र अपने नागरिकोंके जीवनको समुचित जीवन निर्वाहके स्तरपर प्रतिष्ठित करके वर्तमान आर्थिक एकाधिपत्यको हटावें और प्राकृतिक सम्पदाओंपर कुछ विशेष अधिकारोपभोगी एवं स्वेच्छाचारी वर्गोंके एवं राष्ट्रोंके एकाधिपत्यमय और स्वच्छन्द शोषणका उन्मूलन करें।

(७) एक समुचित सामाजिक व्यवस्था प्रत्येक राष्ट्रमें उपलब्ध हो। अर्थात् विश्व

समाजका हित और सामञ्जस्य प्रत्येक राष्ट्रकी आन्तरिक समानता और सामाजिक व्यवस्था से घनिष्ट रूपसे सम्बन्धित है । अत. पारिवारिक सुरक्षाके लिये ऐसे प्रयत्नोंका अनुशरण करना चाहिये जैसे :—समस्त वर्ग और श्रेणियोंका सार्वजनिक हितके लिये सहयोग और सगठन, आत्म-विकाश और पारिवारिक जीवनके विकाशके लिये समुचित आजीविका का प्रवन्ध, श्रमिकोंके लिये अनुकूल परिस्थितियोंका आयोजन और श्रमिकोंके हितोंपर असर डालनेवाले निर्णयोंमें उनका समुचित सहयोग प्राप्त किया जाय ।

कौंसिल ऑफ क्रिस्चियन और जियूज। (ब्रिटेन) (कार्यकारिणी समिति द्वारा अमेरिका की विश्व शान्ति के लिये त्रिधर्म घोषणाके प्रति उत्तर-स्वरूप विज्ञप्ति मई १९४४)

अक्टूबर ७ सन १९४३ को अमेरिकाके प्रोटेस्टेन्ट रोमन, केथोलिक और यहूदी सम्प्रदायोंके प्रमुखों द्वारा प्रकाशित एव मान्य-विश्व शान्तिके घोषणाका ग्रेट ब्रिटेनका यह ईसाई और यहूदी परिषद हृदयसे स्वागत् करता है और तत्रान्तर्गत निहित सिद्धान्तोंके प्रति अपनी सहमति प्रगट करता है । वर्गोंके पारस्परिक सम्बन्धोंमें, जनताके सामाजिक जीवनमें तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धोंमें धार्मिक और नैतिक सिद्धान्तोंका प्रयोग करनेपर जोर देना इस परिषदके उद्देश्योंके सर्वथा अनुकूल है । इस परिषदका दृढ़ विश्वास है कि शान्ति तथा शत्रुओंमें सद्भावनाके प्रतिष्ठान, युद्ध और युद्ध-जनित हानियोंका मूलोच्छेदन, रचनात्मक कार्य करना और सद्विश्वासके नवयुगका प्रवर्तन करनेके लिये प्रार्थना और प्रयत्न करना, समस्त धार्मिक व्यक्तियोंका परम कर्त्तव्य है । प्रत्येक व्यक्तिके स्वत्वोंके प्रति विशेषतया निर्धन निर्बल और अनुन्नत व्यक्तियोंके लिये—और समस्त मानव-समाजके प्रति उत्तर-दायित्व की भावना रखनेके लिये, समस्त विवेकी पुरुषों और स्त्रियोंकी शक्तिका समुचित प्रयोग किया जाना परामावश्यक है । चर्च और सिनागोगका कर्त्तव्य है कि वे अपने अनु-यायियों को इसके लिये न केवल प्रोत्साहित ही करें अपितु राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा अन्य लोकोपकारी साधनोंमें ऐसी भावना अनुप्राणित करें जिससे कि सुखद सांसारिक व्यवस्थाको स्थापित किया जासके । धार्मिक नीत्तिके अभावमें चिरस्थायी शान्ति स्थापित नहीं हो सकती है । वर्तमान संसारके आर्थिक और राजनैतिक ढाँचेकी अपेक्षा चर्च और सिनागोग प्राचीनतर एवं उच्चतर अन्तर्राष्ट्रीय एव सार्वभौमिक सस्था होनेके कारण ऐसे संकट काल में दृढ़तापूर्वक अपने विचारों को प्रगट करने की अधिकारिणी हैं । वे ऐसे

ईश्वरीय सिद्धान्तों की भीत्ति पर स्थापित हैं जिन पर सामाजिक न्याय अवस्थित रहना चाहिये।

राजनैतिक संस्थाओं का पुनरसंगठन समारके वाणिज्य व्यवसाय और कृषि-कलाका पुनः उनित प्रारम्भ, राष्ट्रों की एकता, अन्तरनिर्भरता और हितकारिता को प्रोत्साहित करनेके लिये अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंका पुनः प्रस्थापन, प्रतिनिधि राजनीतिज्ञ गणों और व्यवस्थापिका सभाओं का प्रमुख उद्देश्य रहेगा इसके साथ-साथ राजनीतिज्ञ गणों की योजनाओं और कार्योंको धर्म को कसौटी पर कसने तथा न्याय, दया तथा शान्ति से उनका सामञ्जस्य तो है इस पर नियन्त्रणात्मक दृष्टि रखने के उत्तरदायित्व में समस्त ईसाई और यहूदी जन पूर्ण सहयोग प्रदान करेंगे।

अशान्त विश्व को शान्ति का सन्देश

विपम परिस्थिति :

यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि आजकी दुनिया सर्वतोमुखी अशान्ति से व्याकुल एवं पीडित है ; केवल इने-गिने दृढव्रती, सन्तोपी, आत्म-कल्याण के पथिक, सर्वस्व त्यागी साधुओं के अतिरिक्त प्रायः समस्त ही लोक अपना जीवन वडीही अशान्त एवं विपम परिस्थितियों में से व्यतीत करता हुआ नजर आ रहा है। ऐसी सवव्यापिनी अशान्ति के कई कारण हो सकते हैं। परन्तु साम्प्रतकालीन अशान्ति का कारण जो हमारे सामने है, वह है—महा भीषण प्रलयंकारी विश्व-युद्ध। यद्यपि यह युद्ध, विश्व के कतिपय क्षेत्रों तक ही सीमित है, तथापि उसका विपैला प्रभाव दुनिया के कोने-कोने में अपना असर डाल रहा है और इसीलिये यह ठीक ही विश्वव्यापी युद्ध कहा जाता है। युद्ध नाम 'पारम्परिक-संघर्प' का है। किसी भी प्रकार के पारस्परिक संघर्प में अशान्ति, असन्तोप एवं विनाश के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं हो सकता।

युद्ध के परम्परा कारण :

प्राचीन काल में युद्ध प्रायः तीन कारण से ही हुआ करते थे :—

(१) स्त्री के लिये ;

(२) धन के लिये ; और

(३) भूमि के लिये।

राम और रावणका महायुद्ध, जो रामायण में सविस्तर वर्णित है, एक मात्र साध्वी सीता को लेकर हुआ था। जैन शास्त्रों में वर्णित कोणिक और महाराज चेटक का महासंग्राम, दीर्घ काल तक चालू रहा और उसमें केवल दो ही दिनों में एक करोड़ अस्सी लाख मनुष्यों का काल सिद्ध हुआ था। इस युद्ध का मूल हेतु वहुमूल्य हार और सेचनक नामक गंधीहस्ती था। इस तरह यह युद्ध सम्पत्ति धन के लिये ही हुआ था। कौरव और पाण्डवों का महायुद्ध—जो कि अनेक अक्षोहिणियों एवं अनेक महारथी वीरों का क्षय करनेवाला हुआ तथा जिसमें अर्जुन पुत्र वीर अभिमन्यु जैसे की अन्याय मृत्यु हुई थी - पाण्डव चरित्र में पूर्णतया वर्णित है। इस संग्राम का मूल कारण थी—भूमि। जब कि पाण्डव वारह बर्ष के प्रगट वनवास एवं तेरहवें बर्ष के प्रच्छन्न वास करने के बाद भाई दुर्योधन के पास केवल पाँच ही ग्राम माँग कर सन्तोष कर लेना चाहते थे, तब क्या हानि होती यदि दुर्योधन उनके प्रस्ताव क' स्वीकार करलेता और विश्व को उस महाभीषण संग्राम से और उसके विनाशकारी दुष्प्रभाव से मुक्त रखता ? अथवा क्या हर्ज होता अगर पाण्डव ही तेरह बर्ष की तरह समूचा जीवन संयमसे व्यतीत कर लेते ? परन्तु जमीन का विषय ऐसा ही है कि मनुष्य इसके लिए सार्वजनिक हिता-हित आर अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य की भावना को भी भूल जाता है।

युद्ध के अर्वाचीन कारण :

साम्प्रतकालीन युद्ध के कारणों में दो कारण तो वे ही है जो ऊपर वत-लाये गये हैं, परन्तु पहले कारण से अर्थात् स्त्री के हेतु से युद्ध आधुनिक समय मे कम ही सुनने मे आते है। उसके स्थान में अव एक अन्य ही कारण प्रचलित हो गया है। वह है 'अपने सिद्धान्तवाद या मत विशेष का

प्रचार। यद्यपि वास्तविक सत्य सिद्धान्त एवं मत का प्रचार अत्यावश्यक है और प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सत्य धर्म, सिद्धान्त या मत की अमिट छाप का लगना भी जरूरी है, परन्तु वह उपदेश, शिक्षा तथा अनवद्य प्रचार पद्धति के द्वारा, हृदय परिवर्त्तन करके ही किया जाना अभिष्ट है इसके विपरीत सत्य सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रचार के लिए भी जो कलह, युद्ध या प्राणनाशकारी शस्त्रादिक का प्रयोग करता है, वह निश्चय ही धर्म को उसके उच्चस्थान से गिरानेवाला और संसार-शान्ति को भङ्ग और विनाश करने वाला होता है। भगवान महावीर जो सत्य धर्म के महान प्रणेता और तत्कालीन परिस्थितियों में, ऐतिहासिक दृष्टिकोण से, एक महान क्रान्तिकारी विचार प्रवर्तक के रूप में दुनिया में प्रगट हुए थे उन्होंने केवल उपदेश से व अपने विशुद्ध आचरण के आदर्श को जनता के समक्ष उपस्थित करके तथा निर्वद्य प्रचारपद्धति को काम में लाकर ही उस हिंसायुग में अहिंसा धर्म को विश्वव्यापी बनाया था, न कि जोर-जुलम, विग्रह, संग्राम, आर्थिक प्रलोभन या बल प्रयोगसे। जबरदस्ती या आर्थिक प्रलोभन से चोरकी चोरी, हिंसक की हिंसा, व्यभिचारी का व्यभिचार दूर करना "धर्म प्रचार करना" न कहा जाकर "अधम प्रचार" की कक्षा में आ जाता है और अन्त में वही अशान्ति या युद्ध का कारण बन जाता है। वर्तमान जगत के फासिज्म, नाजिज्म, बोलसेविज्म आदि वादों को इसी श्रेणी में लिया जा सकता है। जिन वादों, शासन-सत्ता व धर्मों का अस्तित्व और प्रचार प्रतिशोध और हिंसा तथा पशुबल के आधार पर होता है वे संसार में चिर-स्थायी एवं वास्तविक शान्ति की स्थापना नहीं कर सकते हैं।

इसके अतिरिक्त वर्तमानकालीन युद्धों के कुछ अन्य कारण भी है। हम केवल दो ही कारणों का उल्लेख करते है, यथा—

(१) वर्तमान शिक्षा प्रणाली : वर्तमान शिक्षा प्रणालीमें केवल भौतिक अभिसिद्धि ही मुख्यतया लक्ष्यभूत रहती है। आध्यात्मिक विकाश, जो कि शिक्षा का मूल और चरम लक्ष्य रहना चाहिए, वह आधुनिक शिक्षा प्रणाली में कमसे कम है। प्रारम्भ से ही अपरिपक्क मस्तिष्क वाले बालकों को यही बात सिखलाई जाती है कि आत्मा नाम की कोई सनातन वस्तु नहीं है। बन्दरों की विकशित

अवस्था ही मनुष्य है तथा आत्मा की उन्नति एवं जनकल्याणकी भावना के विकाशका कोई मार्ग आमतौर से नहीं वताया जाता है। इसके कारण उस अवस्थासे ही बालकोंके हृदयमें अविनय, उच्छृङ्खलता तथा स्वार्थ-परायणता और केवल भौतिक अभिसिद्धि की ही भावना आदि अनेक अवगुण घर कर लेते हैं और आगे चलकर ये ही अशान्ति के कारण रूप वन जाते हैं।

(२) वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ-साथ प्रलयकारी अस्त्र-शस्त्रोंकी अविष्कृति और उनका उपयोग: हालांकि विज्ञान कोई बुरी चीज नहीं है और न विज्ञान के द्वारा किये गये आविष्कार हो सदैव अशान्ति के कारण होते हैं, परन्तु उनके प्रयोगमें पूर्ण सतर्कता और सद्भावना की आवश्यकता होती है। जैन सिद्धान्तोंमें भी तेजोलब्धि आदि कई शक्तियों का वर्णन है। वह कई प्रकारकी कठोर साधनाओं के द्वारा ही प्राप्त होती थी। जिसके पास वह शक्ति मौजूद होती है, वह मनुष्य अपने स्थान से ही उसके प्रयोग से एक बहुत बड़े भूभाग को (सोलह देशों को) भष्म कर सकता है। परन्तु ऐसी शक्तियोंके साधकों को यह बात भी सिखलाई जाती थी कि उन शक्तियोंको प्रयोगमें लानेवाला उत्कृष्टतः अनन्त काल पर्य्यन्त संसार-चक्रमें वास—परिभ्रमण करता है। इसी कारण से ही वे शक्तिशाली किन्तु भवभीरू मनुष्य वैसी शक्ति को काममें लानेसे विमुख रहते थे। किन्तु आधुनिक वैज्ञानिकोंके हृदयमें ऐसी भावना बहुत कम रहती है और अपने विनाशकारी आविष्कारोंके प्रयोगमें वे संसार के हित-अहित को भूल जाते हैं। फलस्वरूप विभिन्न देशोंके वैज्ञानिकों के आविष्कारों की पारस्परिक स्पर्द्धा आगे जाकर भीषण संहार के रूपमें प्रगट होती है।

प्राचीन युद्धों की अपेक्षा वर्तमान युद्धोंकी भीषणता:

युद्ध प्राचीन कालमें भी होते थे, वर्तमान कालमें भी होते हैं और भविष्यत् कालमें नहीं होंगे ऐसी वात नहीं है। क्योंकि दुनियामें जब तक राग, द्वेष, ईर्षा आदि विद्यमान रहेंगे तब तक किसी न किसी रूपमें युद्ध भी होते रहेंगे। किन्तु अर्वाचीन युद्ध प्राचीन युद्धोंकी अपेक्षा अधिक विषम

एवं नाशक है। प्राचीन युद्धों मे प्रायः सैनिक और योद्धाओं का ही संहार होता था वहां वर्तमान मे योद्धाओं के युद्धों मे सैनिकों के साथ निर्दोष नागरिकों— यहां तक कि बालक, स्त्री और अपाहिज तथा रोगियों का भी घमशान देखने और सुनने मे आता है। प्राचीन युद्धों में रथारोहीका रथारोही से, अश्वारोही का अश्वारोही से पंदल का पंदल से, अर्थात् उभय पक्ष मे समान शस्त्रों से ही प्रायः युद्ध होता था। आकस्मिक आक्रमण की अपेक्षा सामने वाले को सावधान करके तथा ललकार कर प्रहार किया जाता था। अचानक या धोखे से आक्रमण करना अधर्म युद्ध कहा जाता था। अर्थात् युद्ध में भी नीति, न्याय और औचित्य पर दृष्टि रखी जाती थी। इस के विषय मे त्रिपृष्ट वासुदेव का उदाहरण बड़ा ही संगत है। ऐसे महायोद्धा भी थे कि जो संग्राम मे भी विपक्षी के बाण चलानेके पहले बाण न चलाने की प्रतिज्ञा रखते थे। प्रसंग अनुकूल वरुण (नाग दौहित्र) या महाराज चेटक का दृष्टान्त भी हृदयग्राही है। इसलिए मूलतः युद्ध पापमय होते हुए भी नीतिपूर्ण होने के कारण धर्म युद्ध कहलाते थे। आधुनिक युद्ध मे तो एक मात्र नर संहार ही मुख्य उद्देश्य रहता है। चाहे वह किसी प्रकार किया जाये। इस कारण से वर्तमान कालीन युद्धों को युद्ध नहीं कह कर महाप्रलय कहे तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसी से युद्ध जन्य अशान्ति से आक्रान्त होकर समस्त विश्व आज शान्ति की मांग कर रहा है। विश्व-धर्म-सम्मेलन इस बात की अपील कर रहा है कि समस्त धर्माचार्यों का यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी ऐसी आवाज प्रत्येक प्राणी के कानो तक पहुंचायें जिससे शान्ति की पुनः स्थापना हो सके। विश्व-धर्म-सम्मेलन की अपील हमारे कानों मे भी पड़ी और एक धर्माचार्य की हैसियत से पीड़ित संसार को शान्ति का यह सन्देश सुनाने को उद्यत हुआ हूं। मुझे आशा है कि संसारका प्रत्येक सहृदय, शान्ति-इच्छुक सज्जन शान्ति के इस शुभ सन्देश को दत्तचित होकर सुनेगा, मनन करेगा और जीवन के प्रत्येक कार्य मे अवलम्बन करते हुए न केवल अपनी आत्मा को ही शान्ति प्रदान करेगा प्रत्युत साथ-साथ विश्व शान्ति के प्रचार मे भी सहायक होगा।

शान्ति की व्याख्या और भेद :

शान्ति उस आह्लाद का नाम है जिससे आत्मामे जागृति, चेतनता, पवित्रता, हलकापन और मूल स्वरूप की अनुभूति होती है। एक वह भी शान्ति संसार में कही जाती है जो भौतिक (पौद्गलिक) इष्ट वस्तु प्राप्ति के संयोग से क्षणिक शारीरिक एवं मानसिक परितृप्ति के रूप में प्राणी को अनुभव में आती है। परन्तु यह शान्ति-अशान्तिकी कारणभूत होनेसे वास्तविक शान्ति नहीं है। इसलिये पहले कही हुई शान्ति ही शान्ति-गवेषक के लिए अभिष्ट है। यह भी कई तरह की है। एक व्यक्तिगत दूसरी सामुहिक। एक सम्पूर्ण दूसरी आंशिक। सम्पूर्ण शान्ति का अनुभव मोक्ष प्राप्त आत्मा ही कर सकती है। व्यक्तिगत शान्ति से ही सामुहिक शान्ति प्राप्त की जा सकती है। जैन सिद्धान्त का महान् उद्देश्य और लक्ष्य चिर शान्ति को प्राप्त करने का ही है। उसके उपाय इस प्रकार हैं :

(१) महाव्रत ;
(२) व्रत ; और
(३) सम्यक्त्व ।

(१) महाव्रत और उनकी व्याख्या :

महाव्रत पाँच हैं। पहला महाव्रत—'प्राणातिपात विरमण व्रत' कहलाता है। इसका अर्थ है सर्व प्रकारके जीवों की सर्व हिंसा से निवृति अर्थात् मन, वचन, काया से न किसी जीव का प्राणपात करना, न कराना और न अनुमोदन करना। दूसरा महाव्रत है—'मृषावाद विरमण व्रत' अर्थात् सर्व प्रकार के मिथ्यावाद से सम्पूर्ण विरति। तीसरा महाव्रत है—'अदत्तादान विरमण व्रत' अर्थात् सर्व प्रकार की चोरी से सम्पूर्ण विरति। चौथा महाव्रत है—'मैथुन विरमण व्रत' अर्थात् सर्व प्रकारके मैथुन से सम्पूर्ण विरति। पाँचवा महाव्रत है—'परिग्रह विरमण व्रत' अर्थात् धन धान्यादि सर्व प्रकार की सम्पति या उस पर ममत्व से विरति। इन पाँचों महाव्रतों के सम्यक् प्रकार के पालन करने से यथा सम्भव कम समय में ही सम्पूर्ण शान्ति प्राप्त होती है। इन महाव्रतों का पालन करने वाला मुनि कहलाता है। महाव्रतधारी को और

भी बहुत से कठिन उपनियमों का पालन करना होता है। अतः हरेक साधारण व्यक्ति के लिए यह मार्ग आसान नहीं।

व्रत और उनकी व्याख्या :

साधारण व्यक्तियों के लिए प्रथम मार्ग की अपेक्षा जो बहुत सरल है, उस दूसरे मार्ग का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है। वह है 'व्रत पालन'। व्रत संख्या मे बारह है। जिनमें पांच 'अणुव्रत', तीन 'गुणव्रत' और चार 'शिक्षा-व्रत कहलाते है। संक्षेपमे इनका खुलासा इस प्रकार है :

प्रथम व्रत—'स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत' कहलाता है। इसका अर्थ है यथाशक्य जीव हिंसा से निवृति। दूसरा व्रत है—'स्थूल मृषावाद विरमण व्रत' अर्थात् यथाशक्य असत्य से निवृत्ति। तीसरा व्रत है—'स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत' अर्थात् यथाशक्य चोरी से निवृति। चौथा व्रत है—'स्थूल मैथुन विरमण व्रत' अर्थात यथाशक्य मैथुन से निवृति और परदारा का त्याग। पांचवां व्रत है—'परिग्रह परिमाण व्रत' अर्थात यथाशक्य परिग्रह से निवृति। चूंकि ये पांचों व्रत उपरोक्त महाव्रतोंके ही स्थूल—छोटे रूप है अतः इन्हें 'अणुव्रत' कहा जाता है। छट्ठा व्रत है—'दिशिपरिमाण व्रत' अर्थात छओं दिशाओंमें यथा शक्य गमनागमन का परिमाण करना। सातवां व्रत है—,उपभोग परिभोग परिमाण व्रत' अर्थात् खाने, पीने, पहनने आदि मे काम आनेवाली भोगोप-भोग वस्तुओंके व्यवहारका नियंत्रण या सीमा करना। आठवां व्रत है—अनर्थ दण्ड विरमण व्रत अर्थात् किसी भी निरर्थक पाप करने का परित्याग करना। ये तीनों ही पिछले व्रत प्रथम पांच अणुव्रतों के गुणों की वृद्धि करने वाले है—उन्हें व्यापक बनाते है—विस्तृत करते हैं, अतः इन्हे 'गुणव्रत' कहा जाता है। येआठों व्रत जीवन पर्य्यन्त के लिए होते है। नवमां व्रत—'सामायिक व्रत' कह-लाता है। एक मुहूर्त के लिए सावद्य—पापकारी कार्यों का परित्याग कर साधुवत् वृत्ति धारण करना सामायिक व्रत है। एक मुहूर्त का यह नियम दिन में एक बार या अनेक बार धारण किया जा सकता है। दसवां व्रत 'देशाव-काशिक व्रत' कहलाता है। पहले आठ व्रत जीवन पर्य्यन्त के होते है। दसवें व्रत में कुछ समय के लिए इन व्रतों की सीमा को और भी संकुचित करना

देशावकाशिक व्रत कहलाता है। उदाहरण स्वरूप किसी ने अगर यह व्रत लिया हो कि वह किसी निरपराध त्रस—हलते चलते जीव को जान बूझकर नहीं मारेगा तो वह किसी भी दिन कम या अधिक समय के लिए यह नियम ले कि वह उतने समय में किसी भी प्राणी का वध नहीं करेगा तो यह देशावकाशिक व्रत होगा। ग्यारहवाँ व्रत 'पोपधोपवास व्रत' कहलाता है। इसमें दिन रात्रि के लिए समस्त खान-पान का त्याग कर, सकल पापकारी प्रवृत्तियों को छोड़ कर, आत्म-उपासना करनी पड़ती है और साधुवत् वृत्ति धारण करनी पड़ती है। इस नियम को व्रतधारी को वर्ष में कम से कम एक बार तो अवश्य पालन करना चाहिए। बारहवाँ व्रत—'अतिथि संविभाग व्रत' होता है। अपने खान-पान के निमित्त बनी हुई वस्तुएँ जो शुद्ध हों उनका कुछ भाग स्वेच्छा पूर्वक त्यागवृत्ति से पंच महाव्रत पालक शुद्ध साधु को देना यही बारहवाँ व्रत है। अन्तिम चार व्रत 'शिक्षाव्रत' कहलाते हैं। क्योंकि ये अभ्यास रूप—शिक्षाप्रद है।

उपरोक्त बारह व्रतों—नियमों को पालन करनेवाला 'श्रमणोपासक या 'श्रावक' शब्द से पुकारा जाता है। ये बारह नियम शान्ति की खोज करनेवाले के लिए अत्यन्त उपयोगी है। एक-एक नियम में संतोष—परितृप्ति की सुधा टपक रही है। सन्तोप से शान्ति प्राप्त होती है। इनकी विस्तृत व्याख्या के लिए 'उपासकदशांग सूत्र', प्रथम आचार्य श्रीमद् भीखणजी स्वामी कृत 'बारह व्रत की चौपई' तथा श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा द्वारा प्रकाशित 'श्रावकव्रत धारण विधि' नामक पुस्तक का अवलोकन किया जा सकता है।

(३) सम्यक्त्व :

सम्यक्त्व अर्थात् यथावस्थित तत्त्व-श्रद्धान। संसार में एक चैतन्य नामकी वस्तु है, जिसे 'जीव' कहते है। उसके लक्षण, स्वरूप और भेदों की अवगति करना। चेतन का विपक्षी अचेतन अर्थात् 'अजीव' पदार्थ। पौद्गलिक सुख, दुःख के कारण 'पुन्य', 'पाप'। चेतन की विजातीय वस्तु पुद्गल रूप कर्मों के संयोग का हेतु 'आश्रव'। उस संयोग की रुकावट 'संवर'। चेतन-संयुक्त विजातीय द्रव्य की पृथकता को 'निर्जरा' कहते है। चेतन और अचेतन दोनों

के अन्योन्य अश्लेष रूप 'बन्ध' और आत्यंतिक रूपसे विजातीय वस्तुसे आत्मा की पृथकता के होने पर चैतन्य अर्थात आत्मा का मूल स्वरूप में अवस्थान 'मोक्ष' है।

उपरोक्त तत्त्वों को हृदयंगम कर उनकी वास्तविकता पर दृढ़ विश्वास करने को जैन दर्शन मे 'सम्यक्त्त्व' कहते हैं। सम्यक्त्त्व वाले मनुष्य भी हर समय पर को पीडा देने मे पराङ्मुख रहते हैं। इससे उनकी कलह, कदाग्रह एवं अशान्ति के प्रति उदासीनता रहती है। इसलिए जितना अधिक सम्यक्त्व का प्रचार किया जायगा, उतनी ही शान्ति की वृद्धि और अशान्ति का ह्रास होगा। उपरोक्त तीन उपाय विश्व-शान्ति के लिए अत्यन्त उपयोगी साधन हैं।

विश्व-शान्ति के सार्वभौम उपाय :

इन साधनों मे भी यदि किसी के बाधा आती हो तो निम्न पंक्तियो में ऐसे कितनेक नियमों का निर्देशन किया जाता है जो सर्वमान्य एवं सर्वधर्म समर्थित कहे जा सकते हैं। जहाँ तक मैं समझता हूं, इन मे साम्प्रदायिकता की किञ्चित भी झलक नहीं है और इनमे अशान्ति रोग की अचूक दवा है। प्रत्येक प्राणी के लिए ये उपादेय हैं :

(१) प्रथम विश्व भर मे अहिंसा का प्रचार किया जाय और हिंसा के प्रति जन साधारण के हृदय मे घृणा—हार्दिक घृणा उत्पन्न की जाय। 'स्वजीवन की तरह ही दूसरोंको भी अपना जीवन वल्लभ है—न कि मरण' इसका पाठ पढाया जाय। जिससे शान्ति का बीजारोपण हो सके।

(२) क्रोध, अभिमान, दम्भ और असन्तोष ये चारों ही अशान्ति के मूल हैं। जितने ही विग्रह जगत मे हैं वे सब कषायचतुष्क के ही प्रभाव मात्र है। इसलिए यथासाध्य इन चारों को कम करने का पूर्ण प्रयत्न किया जाय।

(३) वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्त्तन किया जाय। भौतिक अभिसिद्धि को ही एक मात्र लक्ष न रखकर शिक्षा में आध्यात्मिकता को

मुख्य स्थान दिया जाय। इसके लिए राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय चेष्टा की जाय।

(४) भावी मानव समाज की व्यवस्था नैतिक और धार्मिक तथा सदाचार पूर्ण नियमों को छोड़ कर द्वेष और स्वार्थपूर्ण तथा शोपण नीति के आधार पर न की जाय।

(५) वैज्ञानिक आविष्कारों का उपयोग अनियन्त्रित रूप से नहीं किया जाय। कम से कम युद्ध के लिए तो एक वारगी ही वन्द कर दिया जाय। भौतिक सुखों के लिए भी यथासाध्य उनका उपयोग करने की चेष्टा कम की जाय।

(६) ऐसे राष्ट्रीय प्रेम का जिससे अन्य राष्ट्रों से मनोमालिन्य होने की सम्भावना हो—प्रचार न किया जाय। उसकी अपेक्षा वास्तविक विश्व वन्धुत्व का प्रचार अधिक से अधिक किया जाय और आर्थिक तथा राजनैतिक प्रतिद्वन्दिता को घटाने का पूर्ण प्रयास किया जाय।

(७) आवश्यकता से अधिक संचय करने की चेष्टा न की जाय। पारस्परिक स्पर्धा' इर्ष्या, 'सत्ता-प्राप्ति' दूसरे की सम्पति, स्वत्त्व और सौख्य को हड़पने की चेष्टा न की जाय। इसी से व्यक्ति, समाज और राष्ट्रों मे अशान्ति हो जाती है।

(८) दुर्वल, दलित जातियों और देशों पर जाति-विशेष के कारण अन्याय और अत्याचार न किया जाय। न्याय, अपक्षपात और मनुष्यत्व के मूल सिद्धान्त जीवन में अधिक से अधिक विकशित किये जायं।

(९) वल प्रयोग, कूटनीति, आर्थिक प्रलोभन और अन्य अन्याय पूर्ण तथा कुत्सित साधनों से किसी भी मत, धर्म, सिद्धान्त या विचारधारा का प्रचार न किया जाय।

धार्मिक स्वतन्त्रता प्रत्येक राष्ट्र को उपलब्ध हो। धार्मिक स्वतंत्रता का अपहरण करना या धर्माधिकारों पर कुठाराघात करना, मनुष्य के जन्मसिद्ध अधिकारों पर आघात करना है।

त्रिधर्म (प्रोटेस्टेन्ट, केथोलिक और यहूदी) घोषणा में विश्व शांति के लिये जिन, सात सिद्धान्तों को निर्णित किया है वे सांसारिक प्रवृति से अधिक

सम्बन्ध रखने वाले हैं; अतः जैन सिद्धान्तानुसार उनका अनुमोदन या उनके प्रति सम्मति प्रदर्शित करना एक सच्चे जैन मुनिके लिये नियम विरुद्ध है; इसलिये उनका जहांतक सांसारिक प्रवृति से सम्बन्ध है, उनके बारेमें कुछ भी नहीं कहना चाहता; परन्तु इसके साथ-साथ में यह भी स्पष्ट करना अपना परम कर्त्तव्य समझता हूं कि जहां तक उनका सम्बन्ध दोष-रहित अर्थात् निर्वद्य प्रवृति तथा संसार निवृति से है वहां तक मैं उनका हार्दिक समर्थन और स्वागत् करता हूं। मैं समझता हूं उक्त सातों सिद्धान्तोंमें निवृति को प्रधानता दे दी जाय तो मेरे द्वारा निर्दिष्ट नौ सिद्धान्तोंमें और उनमें बहुत कुछ समानता आ जायेगी और इसी अन्तरको दिखानेके लिए विश्व-शांति-प्रदायक नव नियमोंका निर्माण किया गया है। मुझे आशा ही नहीं अपितु दृढ़ विश्वास है कि ऊपर कथित नव नियम जो कि समस्त संसारके लिये परम कल्याणकारी हैं, उनका यदि पूर्ण लाभ उठाया जायगा तो समूचे विश्वमें अशान्तिका अधिक से अधिक नाश होकर शान्तिका साम्राज्य स्थापित हो सकेगा।

अहिंसा और विश्व शान्ति

प्रदाता :

श्रीमद् तुलसीरामजी महाराज

नवमाचार्य्य

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय

प्रकाशक :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा

२०१, हरीसन रोड, कलकत्ता ।

अहिंसा और विश्वशाँति का सन्देश

प्रदाता :

श्रीमद् तुलसीरामजी महाराज

नवमाचार्य्य

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय

अहिंसा और विश्वशाँति

मुद्रकः—
आदर्श साहित्य सघ द्वारा सचालित
रेफिल आर्ट प्रेस
३१, बडतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता ।

भारतीय दर्शन का लक्ष्य

"अप्पणा सच्च मेसेज्जा मेत्ति भूएसु कप्पए" सत्य का अन्वेषण करना और प्राणी मात्र के साथ मैत्री रखना, यह भारतीय दर्शन का मूल सूत्र रहा है। इस उदार लक्ष्य को हृदयङ्गम कर भारत के दार्शनिको ने विश्व की छानबीन की और उन्होने एक अमूल्य तत्त्व ढूढ निकाला। अन्वेषण करना प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति का काम है। अन्वेषण के द्वारा ही मनुष्य ज्ञान से विज्ञान तक पहुच सकता है। विज्ञान का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान, दूसरे शब्दो में कहे तो अन्वेषण पूर्वक ज्ञान। ज्ञान साधारण जानकारी है, उस दशा मे विज्ञान उसका परिष्कृत रूप है। आज का युग भी वैज्ञानिक युग है।

आधुनिक विज्ञान पश्चिमी देशो में पनप लिया है और अधिकतर वही उसका बोलवाला है। विज्ञान के चमत्कारपूर्ण आविष्कारो की चकाचौंध में सारी दुनिया की आखें चौंधिया गई है। आजका विज्ञान चमत्कारपूर्ण है, कलापूर्ण है, पर केवल भौतिक तत्त्वो के पीछे पडा हुआ है। आज के लोग उसकी चमक दमक में फँसकर भारतीय विज्ञान को उससे कम मानने लग गये है। यह अनुचित हुआ है। वस्तु का मूल्याकन उसके परिणाम पर निर्भर होता है। पाश्चात्य विज्ञान के परिणाम है—प्रलय, विस्फोट प्रणाश, हाहाकार और भूख। आज भूमि है, धान भी उपजता है, फिरभी जनता में त्राहि-त्राहि मची हुई है। अगणित मिलें है, फिरभी तन ढाकने को पूण वस्त्र नही मिलते। यह समझना भयकर भूल होगी कि भारतीय आधुनिक विज्ञान के हृदय तक नही पहुँच पाये थे। प्राचीन ऋषि महर्षियो की ज्ञान राशियो में विज्ञान के रत्न बीजरूप में जगमगा रहे है। उसका विलोडन करने वाले इससे भलीभाति परिचित है। जहा तक मेरा अनुमान है, पाश्चात्य वैज्ञानिको ने भी अपने अन्वेषणो में उसका पूरा पूरा उपयोग किया है। भारतीय विज्ञान राशि से उन्हे पूर्ण सफलता मिली है। भारत के तत्त्ववेत्ताओ ने विज्ञान के रहस्यो को सुदूर अतीत में ही समझ लिया था। फिर भी वे आत्मदर्शी थे, इसलिए अपनी आत्म शान्ति को अक्षुण्ण रखने के लिए उसको शिरमौर नही बनाया, कोई महत्त्व नही दिया। उनकी आत्मोन्मुखी दृष्टि में विज्ञान का मौलिक-रूप निकल आया। उन्होने अपनी सारी साधना को बटोर कर एक छोटा सा तत्त्व जनता के सन्मुख रक्खा। उनके दूरदर्शी शब्दो में वही विज्ञान है। उन्होने कहा—

> "एव खु नाणिणो सार, ज न हिंसई किंचणं।
> अहिंसा समयं चेव, एयावन्त वियाणि या॥"

ज्ञानों का अथवा यों कहिये कि ज्ञान प्राप्त करने का सार यही है कि किसी प्रकार की हिंसा न की जाय। जो अहिंसा है, समता है वही विज्ञान है—इससे बढ़कर दूसरा कोई विज्ञान नहीं है। इस भारतीय विज्ञान के परिणाम सुन्दर हुए हैं और होंगे। इस भौतिक विज्ञान से त्रस्त दुनिया आज सुख और शान्ति की प्यासी होकर इसकी ओर टकटकी लगाये देख रही है। उस विज्ञान ने बहुत कुछ दिया पर शान्ति नहीं मिली, सुख नहीं मिला, अतएव शान्ति और सुख की भूखी जनता इस विज्ञान को सतृष्ण आंखों से निहारने लगी है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने जो तत्त्व समझने का था, उसकी ओर ध्यान तक नहीं दिया और जो ध्यान देने का नहीं था, उसको करीब करीब चरम सीमा तक पहुंचाने का प्रयत्न किया। प्रसन्नता की बात है कि अब उन्होंने भी करवट बदली है। अपने आविष्कारों की प्रतिक्रियाओं से थकेमांदे होकर कुछ आत्म-अन्वेषण की ओर झुके हैं।

वैज्ञानिक कौन ?

भारतीय दर्शन के अनुसार वही महान् वैज्ञानिक है, जिसने अहिंसा का तत्त्व समझा है, अन्वेषण किया है और उसको अपने जीवन में उतारा है।

अहिंसा क्या है ?

"सव्व भूएसु संजमो" प्राणीमात्र के प्रति संयम है, समता है मैत्री है, यह अहिंसा है। अहिंसा अपने परिवार, कुटुम्ब, समाज एवं राष्ट्र तक सीमित नहीं रहती। उसकी परिधि विशाल है। उसकी गोद में जगत् के प्राणीमात्र सुखकी सॉस लेते है।

हिंसा-त्याग क्यों ?

हिंसा को त्यागने का या यों कहिये कि अहिंसा को अपनाने का

मुख्य उद्देश्य अपना आत्म-कल्याण है। हिंसा करने वाला किसी दूसरे का ही अहित नही करता वल्कि अपनी आत्मा का भी अनिष्ट करता है—अपना पतन करता है, आत्मा का वैर बढाता है, शत्रु खडा करता है। यदि मनुष्य अपने आप किसी की हिंसा न करे तो उसका कोई भी शत्रु नही है। दूसरा कोई कुछ विगाडने वाला नही है। कोई भी मानव पर-उपकार एव दूसरो की रक्षा के लिए अहिंसा नही अपनाता उसमें अपना स्वार्थ अन्तर्हित रहता है। अपनी आत्मा को उन्नत और उज्वल वनाने के लिए अहिंसा का प्रयोग किया जाता है। उपकार और दूसरो का वचाव तो इसके साथ अपने आप हो जाता है। हिंसा-त्याग का दूसरा कारण यह भी है कि सव जीवो को जीवन से प्यार है, सव जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता, दुख किसी को भी प्रिय नही इसलिए क्या अधिकार है कि कोई किसी के जीवन को लुटायें, प्राणो का नाश करें ? इस प्रकार सोचकर भी कोई अहिंसा का उपासक वन पाता है पर यह उसकी उपासना का गौण कारण है। मुख्य कारण तो अपनी आत्मा को विशुद्धि के उच्च स्तर पर पहुचाना ही है। हाँ, यह सच है कि अपने सुख-दुख के साथ दूसरो का सुख-दुख तौलने से मनमें समता आती है और क्रूर विचारो का लोप होता है।

अहिंसा का पूर्ण रूप

जो समो सव्व भूएसु, तसेसु थावरे सु य।
तस्स सामाइय होई, ईइ केवलि भासिय ॥

त्रस और स्थावर छोटे और वडे, सूक्ष्म और स्थूल सव जीवो पर जो समता और सम्भावना रक्खी जाती है, वह अहिंसा है, सामायिक है। तत्त्वदर्शी महर्षियो ने इसका उपदेश किया है।

इसमें अहिंसा का पूर्ण लक्ष्य प्राणीमात्र के प्रति वैर न करना—

समर्थन करता है। यह अहिंसा का अतिरंजित रूप है—केवल देखने एवं सुनने की वस्तु है। यह व्यावहारिक नहीं है मानव-शरीर में उतारा नहीं जा सकता। इस प्रकार के प्रश्न किये जा सकते हैं। पर मैं कहता हूं, यह असम्भव नहीं है। यह मानव-जीवन के लिए है। अहिंसा मानव जीवन में अवतरित हुई है और अब भी हो सकती है। यह आदर्श है, इसमें कोई सन्देह नहीं। पर आदर्श वही होता है, जिसका आचरण किया जा सके। जो वस्तु किसी से भी व्यवहार में न आये, वह आदर्श भी नहीं हो सकती। जिसे कोई कर ही नहीं सके, भला उसमें सत्त्व ही क्या? फिर वह आदर्श ही क्या? यह सच है कि साधारण व्यक्ति पूर्ण अहिंसा का आचरण नहीं कर सकता, पर कोई भी नहीं कर सकता, यह बात मिथ्या है। जो आत्मलीन या अन्तर्दृष्टिवाले मुमुक्षु होते हैं, उनके लिए पूर्ण अहिंसा का पालन करना सभव है। जो अहिंसा को ही जीवन मानकर जीते हैं, जीवन और मृत्यु की कुछ अपेक्षा नहीं करते, उनके लिए उसका पालन सभव क्यो नही होता? जो नियम के सामने जीवन को नगण्य मानते है, उनके लिए असम्भव क्या है—कुछ भी नही।

अहिंसा का सामान्य रूप

चोटी की अहिंसा तक विरले पहुच पाते है। अतएव हिंसा को तीन भागो में विभक्त किया गया है—आरम्भजा, विरोधजा, और सङ्कल्पजा। कृषी आदि जीवन की आवश्यक क्रियाओ में जो हिंसा होती है, वह आरभजा है। किसान हिंसा के लिए यानी जीवोको मारने के लिए खेती नही करता, तो भी उसमें छोटे या वडे जीव मरते ही है, हिंसा होती ही है। रसोई करने वाला जीवो को मारने के लिए चूल्हा नही जलाता, तो भी वक्त पर वडे वडे जीव

स्वाहा हो जाते है। इनमें हिंसा करने का उद्देश्य नहीं, नीति नही इसलिए यह आरम्भजा हिंसा कहलाती है। इसका त्याग सामाजिक प्राणी के लिए अति कठिन है।

आक्रमणकारी के साथ वैसा ही बर्ताव किया जाता है, वह विरोधी हिंसा है। यद्यपि यह कायरता है। हिंसा का उत्तर हिंसा से देने में कोई वीर वृत्ति नही है। वीर पुरुष दूसरो के आक्रमण को हँस हँस कर सह सकता है। तथापि साधारण गृहस्थ के लिए यह बहुत दुष्कर है।

तीसरी हिंसा सकल्पजा है। उसका अर्थ है हिंसा के उद्देश्य से हिंसा करना—दूसरो की सत्ता हडपने के लिए हिंसा करना। जीवन की अनिवार्य आवश्यकता के बिना ही हिंसा करना, नृशसता है, पशुता है। सकल्प पूर्वक हिंसा करने वाला मानव, मानव नही दानव है, पशु है। आज सकल्पी हिंसा का बोलबाला है। अतएव समूचा ससार अशाति की आहे भर रहा है। हिंसा के ये तीन रूप अहिंसा की सामान्य स्थिति तक पहुचाने मे बडे उपयोगी है।

अहिंसा-अणुव्रत

पूर्वाचार्यों ने सकल्पी हिंसा छुडाने के लिए मध्यममार्ग का उपदेश किया। तीनो प्रकार की हिंसाएँ बन्धन अवश्य है,। सकल्पी हिंसा सामूहिक अशाति को जन्म देती है। इसको त्यागने का नाम अहिंसा-अणुव्रत है। इसमे आरम्भी और विरोधी हिंसा का भी यथाशक्ति परिमाण करना आवश्यक है। अन्यथा वे भी बढती बढती सकल्पी के रूप में परिणत हो जाती है। पूर्ण अहिंसा तक नही पहुचने वाले व्यक्तियोके लिए अणुव्रत एक सुन्दरतम विधान है। इससे गृहस्थ-जीवन के औचित्य-सरक्षण में भी बाधा नही आती और हिंसक वृत्तिया भी शात हो जाती है।

अहिंसा ही सच्ची शक्ति है

अहिंसा से मनुष्य कायर बन जाता है, इस भ्रमपूर्ण धारणा को भी दूर निकाल फेंकना चाहिए। कायरता अहिंसा का स्थान कब नहीं ले सकती। सोनेके स्थान किस तरह मिट्टी का कुछ और काम दे सकता है? अहिंसा का वास वीरहृदय में होता है और कहीं नहीं होता। इसलिए पूर्व विद्वानों ने लिखा है "क्षमा वीरस्य भूषणम्।" वैशाली के महाराज चेटक ने अहिंसा-अणुव्रत का कठोर पालन करते हुए गणतन्त्र-शासन का संचालन किया था। चेटक के भगवान महावीर के प्रति भक्ति और अहिंसा के प्रति जितनी गाढ़ श्रद्धा थी, उतनी ही अन्याय का प्रतिकार करने की भावना थी। कोणिक ने अपने भाई से हार और हाथी की अन्यायपूर्ण मांग की। तब महाराज चेटक ने उसका प्रतिकार करने के लिए शस्त्र तक [illegible]। अहिंसक मनुष्य स्वयं हिंसा से बचता है। क्योंकि हिंसा में पाप समझता है। पर उसके विचारों में और वृत्तियों में कायरता नहीं रहती। किसी को मार डालना शूरवीरता नहीं है। यदि ऐसा ही हो, तब तो जंगली भेड़िया, बाघ, चीता आदि हिंसक पशु सब से अधिक वीर माने जायंगे। वीर वह नहीं होता जो मारे, वीर वह है जो मार सके पर न मारे। "मार सके मारे नहीं, ताका नाम मरद" इसमें सच्ची वीरता का लक्षण बताया गया है। इस बात को एकबार और सोचो कि मारना वीरता नहीं, मरना सीखना वीरता है। अहिंसक सच्चा वीर होता है, वह स्वयं मरकर दूसरे की वृत्ति को बदल देता है—हृदय परिवर्तन कर देता है। लाखों वर्षों की नहीं, केवल ढाई हजार वर्ष पुरानी एक घटना है। उसमें अहिंसात्मक वीरता की जीवित प्रतिमा विराजमान है। चन्दनबाला की माता महारानी

धारिणी ने अपने प्राण त्याग कर उस उन्मत्त रथिक में किस प्रकार चेतना फूकी, क्या यह आपको मालूम नही ? रथिक ने रानी का सतीत्व भ्रष्ट करना चाहा तो रानी ने उसे वहुत छ कहा सुना। अन्त में उसने रानी पर वलात्कार करने की विफल चेष्टा की। रानी ने उसके देखते देखते अपनी जीभ खीचकर प्राण-त्याग कर डाला। रथिक अवाक् रह गया। उसका पागलपन कही जाता रहा। माँ ! मा ! ऐसा मत करो २ की प्रतिध्वनि से हृदय छलछला गया। लोग कहते है कि अवलाएँ क्या कर सकती है ? मै कहता हू कि ये क्या नही कर सकती ? स्त्री और पुरुष का कोई प्रश्न नही। हृदय में अहिंसा हो तो सव कुछ सहने का सामर्थ्य आ जाता है। महारानी धारणी ने रथिक का हृदय वदल डाला—इसका नाम अहिंसा है—यह सच्ची वीरवृत्ति है।

शान्ति कैसे ?

मुह मुह पर पर यह आवाज है—प्रश्न है कि शान्ति कैसे होसकती है ?. विश्व शान्ति का क्या साधन है ? इसका सही उत्तर कही पूछो, एकही है। शान्ति का एकमात्र साधन अहिंसा है। नये नये शस्त्रो के आविष्कार एव निर्माण से कभी शान्ति नही होसकती। आज कोई अणुवम में शान्ति की वात सोचता है तो कोई आकाशीय प्लेटफार्म की स्थापना में उसकी कल्पना करता है। सचमुच ये कल्पनाएँ है। ये सव विचार-कोई आज तो कोई कल असफल होकर रहेंगे—पानी के वुलवुले की तरह विलीन हो जायगे। शान्ति के लिए आखिर अहिंसा के चरण चूमने होगे। समूचे विश्वमें स्थायी शान्ति की चर्चा निरी कल्पना है, यह भी हमें नही भूल जाना चाहिए। जव तक ससार रहेगा तवतक विग्रह रहेगा। अभिमान और मोह, स्वार्थ और ममत्व, ये महान् दोष है, नरभक्षी पिशाच है। इनका प्रतिकार करना सवके

लिए उपयुक्त है। और ऐसा हुए बिना विश्वशान्ति की बात करना कल्पना ही रह जाती है। हमें इस बात को भी नहीं भूलना चाहिए कि विश्वशान्ति होगी, तभी [illegible] अन्दर और निश्चिन्तता आती है। इसके बिना बुराई नहीं मिटती। हिंसा से ही हिंसा और वैर से ही वैर की भावना बढ़ती है। शत्रु को मित्र बनाने के लिए जो प्रेम का व्यवहार बताते हैं, वही अहिंसा सच्ची सफलता ही है।

अहिंसा का परिणाम

[illegible] धर्मों में अलग स्थान है। अहिंसक अपने अधिकारों में संतुष्ट रहता है। वह दूसरे की सत्ता को मिटाना नहीं चाहता। उसकी नीति साम्राज्यवादी नहीं होती। पर इसका अर्थ यह नहीं कि वह अपना बचाव ही नहीं करता। दूसरे की सम्पत्ति, ऐश्वर्य और सत्ता को देखकर मुँह में पानी नहीं भर आता, यह अहिंसा का ही प्रभाव है। इसका सबसे ताजा उदाहरण भारत की वर्तमान राष्ट्रीय नीति है। राष्ट्रीय नेताओं ने अपनी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए अनेक बार कहा है कि हमारी नीति आक्रमणात्मक नहीं है। हम किसी को हड़पना नहीं चाहते। केवल अपनी रक्षा चाहते हैं। इन घोषणाओं का विदेशों में बड़ा स्वागत किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में भारत की सचाई की छाप जम गई है।

भारत में अहिंसा का सदा से महत्त्व रहा है। भारतीयों को सदासे अहिंसा की घूटी मिली है। अहिंसा भारत की उपज है। जैनो का तो यह सबसे बड़ा मन्त्र है। इसका पालन करनेवाला दूसरों पर आक्रमण न करे, इसमें कोई आश्चर्य नहीं। महाराजा चेटक ने जो

हिंसा का सवरण किया, वह एक विस्मय करनेवाली प्रतिज्ञा थी। रण-भूमि मे जाकर भी प्रहार की पहल न करना और एकवार से अधिक प्रहार न करना, यह अहिंसा का ही प्रभाव था। कुछ पहले जब भारत परतन्त्र था, तब भी अहिंसा के लिए वह ससार का गुरु माना जाता था। आज वह स्वतन्त्र है। इस दशा में वहाँ अहिंसा का व्यापक प्रचार हो तो कोई विशेष बात नही।

अनूठी सूझ

अहिंसा के उपदेशो की भरमार है, फिर भी हिंसा तो नही मिटी और न मिटने की है, तब फिर अहिंसा से क्या लाभ हुआ? इसके लिए इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अहिंसा-पथ कठोर है। इसमे न कोई प्रलोभन है और न कोई स्वार्थ सधता है। हिंसा का मूलो-च्छेद कभी सभव नही, यह मै पहले ही बता चुका हू। तो भी अहिंसा के उद्देश्य से हम मुख नही मोड सकते। जनता मे सद्भाव का मन्त्र फूकने के लिए अहिंसा की शिक्षा नितान्त आवश्यक है। अन्यथा मानव में मिलनेवाली मानवता और चल बसे। अहिंसा मानव को पशु बनने से रोके हुए है। सब अहिंसक नही बन पाते, फिर भी कुछ न कुछ चेतना आती ही है। अहिंसा हिंसा पर अकुश है। यदि यह न रहे तो "जो मारे वही वीर" इस पशुवृत्ति का सूत्रपात होने में कुछ देर न लगे। इसलिए यदि पूरी हिंसा न मिटे तो भी हिंसा पर नियन्त्रण रखने के लिए अहिंसा का प्रचार पूर्ण उपयोगी है।

उपसंहार

फिर मै एकवार उसी बात का स्मरण करा हूं कि हमारा अहिंसा का आदर्श "आय तुले पयासु" प्राणीमात्र को आत्मतुल्य समझो. यही है। इसी में अहिंसा की पूर्णता है। इसके गम्भीर

उदर में विराजती और विश्व-बन्धुत्व का बोध दिलाना है। यह शांति का मूल बीज है। इससे दुनिया में शांति होती है, अन्तर में शांति होती है। शान्ति मनोयोग से है, साधनों में नहीं। भारत के अतीत में पले हुए व्यक्तियों ने भूमि का अधिकार पाया, प्रभुत्व प्राप्त किया, सब भोग्य वस्तुएं सुलभ थीं, फिर भी उन्हें सुख नहीं मिला, शान्ति नहीं मिली। जड़-विज्ञान से शान्ति और सुख के साधन मिल भी नहीं सकते। जिन्हें इसकी अभिलाषा है, उन्हें हिंसा त्यागनी होगी। अधिक नहीं बने तो सबसे पहले संकल्पी हिंसा तो अवश्य त्याग देनी होगी। इसका प्रयोग कर देखें, इससे निश्चित पारलौकिक सुख और शांति मिलेगी। भारतीय विज्ञान और पश्चिमी विज्ञान, दूसरे शब्दों में आध्यात्मिक विज्ञान और जड़-विज्ञान का अन्तर हृदयङ्गम होगा। फिर अन्तर भी जागेगा और, रक्त-रक्त में यह उठेगा कि अहिंसा ही विज्ञान है।

प्रेषक — श्री रतनलाल शास्त्री
(आत्मार्थी-पत्र)

प्रकाशकः
मंत्री
श्री जैन श्वे० तेरापंथी महासभा
२०१, हरीसन रोड
कलकत्ता ।

मुद्रकः
नवयुवक प्रेस
३, कमर्शियल बिल्डिंग
कलकत्ता ।

धर्म और भारतीय दर्शन

आचार्य श्री तुलसी

[भारतीय दर्शन परिषद्के रजत जयन्ती समारोहके अवसर पर कलकत्तेमें पठित]

प्रकाशक
श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा
३, पोर्च्युगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता—१

धर्म और भारतीय दर्शन

धर्मका उद्देश्य

अहिंसादिका लौकिक उद्देश्य जहाँ समाजकी सुव्यवस्था है, वहाँ उसका पारलौकिक उद्देश्य है आत्म-निर्वाण। इस साध्यको लेकर ही साधन ढंग की सृष्टि होती है। जो समाजका अभ्युदय करे, वह समाजकी मर्यादा है और जो आत्माका अभ्युदय करे, वह धर्म है। धर्मसे भी समाजका अभ्युदय होता है पर वह इसका साध्य नहीं है। सामाजिक मर्यादासे भी धर्माचरण सुलभ होता है पर वह उसका साध्य नहीं होता।

धर्म व्यक्ति और समष्टि

धर्म यद्यपि आत्म-शुद्धिके लिए है फिर भी काफी दूर तक उससे समाजका कल्याण होता है इसलिए वह उससे सर्वथा असम्बद्ध नही रहता। व्यक्तिकी सत्प्रवृत्तिसे समष्टिकी कठिनाइया टलती है, बढती नही। समष्टिका एक एक अग धर्मका अनुशीलन करता है इसलिए वह समाजके लिए है, यह भी कहा जा सकता है। उद्देश्यकी दृष्टिसे वह न व्यक्तिके लिए है, न समष्टिके लिए। आचरणकी दृष्टिसे वह व्यक्तिके लिए भी है, समष्टिके लिए भी। भौतिक उद्देश्योकी पूर्तिकी दृष्टिसे देखे तब वह समाजके लिए नही है तो व्यक्तिके लिए भी नही है। आत्म-शुद्धिकी दृष्टिसे देखे तो वह व्यक्ति और समाज दोनोके लिए है। समाजके लिए जो आवश्यक हो, वह सब धर्म है, यह बात आस्तिक दर्शन स्वीकार नही करते। इसीलिए धर्म और सामाजिकता में पूर्णैक्य नही रहता।

धर्मकी परिभाषा

धर्म उत्कृष्ट मगल है[1]। उसका रूप है—अहिंसा, सयम और तप। वह ऋजु आत्मामें ठहरता है[2]। जैन सूत्र कहते है—आत्महितके लिए धर्म स्वीकार करना चाहिए। आत्महितमे सबका हित है—आत्माका भी और शरीरका भी। 'एक' समाजका अग होता है इसलिए सबका भी। एकसे सबका और सबसे एकका हित वही हो सकता है, जहा अहिंसा हो। अहिंसा ही सर्व जीव क्षेमकरी है। हिंसा जीवन या समाजमें सर्वथा परिहार्य नही तो अपरिहार्य भी नही। अहिंसाकी भित्तिमें धर्म और समाजकी एकता है, हिंसाकी स्थितिमें दोनोकी दो दिशाए है।

'प्रेयस्' की कामना करनेवाला बधता है[3] और 'श्रेयस्' की आराधना

१—दशवैकालिक १।१। २—उत्तराध्यन ३.। ३—दशवैकालिक ४.।

सुधारका केन्द्र

मनुष्य अपना सुधार नही चाहता, समाजका सुधार चाहता है, स्वय को सुधारे विना समाजका सुधार नही हो सकता। अपनी बुराईका प्रतिकार किये विना समाजके सुधारकी बात सोचना धर्मकी मौलिकताको न समझनेका परिणाम है। धर्म व्यक्ति-निष्ट होता है। वह कहता है—प्रत्येकका सुधार हो समाजका सुधार है।

धर्म किसलिये ?

भगवान् महावीरने कहा है—"ऐहिक या पारलौकिक पौद्गलिक सुखोंके लिए धर्म मत करो, श्लाघा-प्रतिष्ठाके लिए धर्म मत करो। धर्म करो आत्म-शुद्धिके लिए—कर्ममलावरणको दूर करनेके लिए।"

धर्मका साध्य आत्म-मुक्ति—निवारण अवस्था है। आत्मा अनन्त ज्ञान-मय अरूपी सत्ता है। आत्मासे ज्ञान सर्वथा पृथक् नही है और न ज्ञानसे आत्मा पृथक् है। जो पूर्वापरीभूत ज्ञान है, वही आत्मा है। उसका स्वरूप पूर्ण समता है। निश्चयदृष्टिमें वही धर्म है। अहिंसा, सत्य आदि आदि उसीके साधन है। भौतिक सुख आत्माका स्वभाव नही है, इसलिए वह न तो धर्म है और न धर्मका साध्य ही। इसलिए उसकी सिद्धिके लिए धर्म करना उद्देश्यके प्रतिकूल हो जाता है।

मिश्रणका फल

इसका अर्थ यह नही होता कि भारतीय दार्शनिकोने ऐहिक अभ्युदयकी नितान्त उपेक्षा की है। सच तो यह है कि ऐसा अभ्युदय उनका चरम लक्ष्य नही रहा। वह भी स्पष्ट है कि भारतीय दर्शनोने धर्म और ऐहिक अभ्युदयका सम्मिश्रण नही किया। धर्मके द्वारा अभ्युदय होता है पर धर्म उसके लिए नही

है। धर्मको अफीम, विष आदि २ कहा गया या कहा जाता है, वह इन दोनोंके सम्मिश्रणका कुफल है। धर्म अपनी मर्यादासे दूर हटकर राज्यकी सत्तामें घुलमिल कर विषसे भी अधिक घातक बन जाता है, यह वाणी धर्म-द्रोही व्यक्तियोकी है, यह नही माना जा सकता। धर्मके महान् प्रवक्ता भगवान् महावीरकी वाणीमे भी यही है—

"विसं तु पीयं जह कालकूडं,
हणाइ सत्थ जह कुग्गहीयं।
एसो वि धम्मो विसओववन्नो,
हणाइ वेयाल इवाविपन्नो।"

अच्छीसे अच्छी वस्तुका भी दुरुपयोग होता है, इस उक्तिका धर्म भी अपवाद नही है और न रहा है। धन और राज्यकी सत्तामे विलीन धर्मको विष कहा जाये इसमे कोई अतिरेक भी नही है।

धर्म और सम्प्रदाय

सम्प्रदाय और मतवादोकी प्रवृत्तियो द्वारा भारतमे भी धर्मकी कम विडम्बना नही हुई है। नि श्रेयस्की सिद्धिके लिए तत्त्वज्ञान है। उसकी गोदमें जल्प, वितण्डा, छल, जातिवाद और निग्रह—स्थान जैसे फूल निखर रहे है। यह क्या है ? धर्मकी सुरक्षा है या मतवादोकी ? धर्म समभावमें है या एक दूसरेकी जय-पराजयमें ? धर्म वही कुठित होता है जहा कि धार्मिक व्यक्ति धर्मकी अपेक्षा मतवादोकी प्रतिष्ठाका अधिक खयाल करने लग जाते है। यह हुआ है, इसीलिए धर्मका सूर्य आज पूर्व जैसा तेजस्वी नही रहा।

सुना जाता है कि आजके मनुष्यमे धर्मके प्रति अश्रद्धा है, वह दर्शनको निठल्ले दिमागका उतार-चढाव मानता है। किन्तु मै इससे सहमत नही। धर्ममें ऐसी कोई वात ही नही जो कि उसके प्रति कोई अश्रद्धा करे। आपका

जिज्ञासु और खोजी मनुष्य दर्शनकी अवहेलना करे, यह न मानने जैसी बात है। वह—मैं क्या हू, कहासे आया हू और कहा जाना है—इसका उत्तर न ले, यह नही जचता। उत्तर अस्ति या नास्ति किसी रूपमे हो, वह अपना-अपना खयाल और प्रेरणा है, पर इस चिन्तनमे दर्शनकी प्रायोजनिकता तो अपने आप सध जाती है। दर्शनका क्षेत्र व्यापक है। उसमें जड-चेतन पदार्थ मात्रकी मीमासा की जाती है। समभाव हो तो वस्तुमात्रका पर्यालोचन धर्मकी आराधना है। आत्मचिन्तन जैसे धर्मध्यान है, ठीक वैसे ही एक परमाणुका चिन्तन भी धर्म-ध्यान है[1]।

ध्यान धर्मका प्रमुख अग है, उसमे ज्यो स्व-रूपका आलम्बन होता है त्यो पर-रूपका भी। धर्म और दर्शनके सम्बन्धका भी यही कारण है। भारतीय धर्मोंकी यह एक बडी विशेषता है कि वे केवल 'आर्ष वाक्य' तक ही सीमित नही रहते, परीक्षाकी कसौटी पर भी अबाधगतिसे चलते है।

आजका युग परीक्षाप्रधान है। इसलिए यदि सद्भावनापूर्वक धर्मकी परख की जाय तो उसका किसी भी आधुनिकतम वादके साथ मेल खा सकता है। और 'वादो' की कमियो या विकारोको मिटा, व्यापक अशान्ति, विग्रह और शोषणको चुनौती दे सकता है।

भारतके दार्शनिक भी अपनी पुरानी मनोवृत्तिको कुछ बदलें, मण्डनात्मक नीतिसे काम करें, धर्मके नामपर फैले हुए विकारोको उखाड फेंकें, समताके तत्त्वोको आगे लायें तो भारतीय धर्म, दूसरे शब्दोमें, "अहिंसा धर्म" विश्वके लिए एक महान् 'वरदान' हो सकता है।

१—तत्त्वानुशासन का।

मुद्रक :
मदनकुमार मेहता
रेफिल आर्ट प्रेस
(आदर्श-साहित्य-संघ द्वारा संचालित)
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट
कलकत्ता ।

धर्म—सब कुछ है, कुछ भी नहीं

प्रवक्ता :

श्रीमद् तुलसी गणी

आचार्य :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय

प्रकाशक :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभ

२०१, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

धर्म—सब कुछ है, कुछ भी नहीं

श्रीमद् तुलसी गणी

आचार्य :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सम्प्रदाय

(जनवरी सन् १९५० के दिल्ली के 'सर्व धर्म सम्मेलन' के अवसर पर प्रदत्त)

धर्म—सबकुछ है, कुछ भी नहीं

शान्ति और अशान्ति दोनों का पिता मानव है। अन्तर्जगत्में शान्तिका अविरल स्रोत वहता है फिर भी बाहरी वस्तुओंके लुभावने आकर्षणने मानवका मन खींच लिया। अब वह उनको पानेकी धुनमें फिर रहा है, बस यहीं अशान्तिका जन्म होता है। मानव अपने आपको भूल जाता है, शान्ति भी अपना मुंह छिपा लेती है। आजका मानव कस्तूरीवाले हरिणकी भाति शातिकी खोजमें दौड-धूप कर रहा है किन्तु उसे समझना चाहिये कि शान्ति अपने आपमे साध्य और अपने आपमें साधन है। वह कहीं बाह्यजगत्में नहीं रहती और न बाहरी वस्तुओंसे वह मिल भी सकती है। यह धार्मिक सम्मेलन फिर इस तत्त्वको जनताके हृदय तक पहुंचाए, यह मेरी हार्दिक अभिलाषा है। तृष्णाका ग्रास बना हुआ मानव सार्वभौम चक्रवर्ती होने पर भी सुखी नहीं होता और सन्तोषी मानव अकिंचन होते हुए भी सुखी रहता है, इससे जाना जाता है कि परिग्रहमें शान्ति नहीं है। भगवान् महावीरने कहा है, 'परिग्रह जैसा दूसरा कोई बंधन नहीं।"

संसारी प्राणी सर्वथा अपरिग्रही बन जायं, यह दुरूह कल्पना है फिर भी यदि वे जीवनके साधनोंको कमसे कम करनेकी चेष्टा

कर, संग्रहको अनर्थका मूल मानें तो समझलो कि शान्ति दूर नहीं है। समूचे विश्व पर अधिकार जमानेवाला एक मुहूर्तमात्र भी सुखकी नींद नहीं सोता, प्राणीमात्रको आत्मतुल्य समझनेवाला तृणमात्र भी उद्विग्न नहीं होता—इससे जाना जाता है कि हिंसामें शान्ति नहीं है। इसलिए 'समूचा संसार हमारा मित्र है, किसीके साथ हमारा वैर-विरोध नहीं है'—शान्तिप्रिय व्यक्तियोंका यह महामन्त्र होता है। गृहस्थ व्यक्ति भी यदि निष्प्रयोजन हिंसा न करे, दूसरोंके अधिकारोंका अपहरण न करे, तो विश्वशांतिका अन्वेषण ही क्यों करना पड़े? जो व्यक्ति इन्द्रिय, मन और वाणी पर नियन्त्रण नहीं रख पाते वे ही कलह आदिको जन्म देते हैं—इससे जाना जाता है कि असंयममें शांति नहीं है। इसलिए वीतराग वाणीमें अहिंसा, संयम और तपस्याको धर्म बताया गया है। धर्मके बिना—दूसरे शब्दोंमें, अहिंसा, संयम और अपरिग्रहके बिना शांतिका कोई बीज नहीं है। यह घोषित करते हुए मुझे आत्मश्रद्धाका अनुभव हो रहा है। यदि जनता शान्तिका अर्थ जीवनके साधनोंका विस्तार करती है तो उसके लिए धर्म कुछ भी कार्यकर नहीं। वह दिन मानव-जातिके इतिहासमें अपूर्व होगा, जिस दिन धर्मका शुद्ध रूप जनताके हृदयमें प्रवेश पाएगा।

जहां तक सत्यान्वेषणका प्रश्न है—वहांतक धर्म और विज्ञान के लक्ष्य दो नहीं हैं। मानव जातिका विकास करना, उसे सुखी बनाना ये लक्ष्य धर्म और विज्ञानके बीच एक भींत खड़ी कर देते है। आत्मा और परम लक्ष्य - परमात्म स्वरूप पाना, इनको भुलाकर विज्ञान-जगत्ने धार्मिक जगत्की कोई हानि नहीं की अपितु विज्ञानको ही अपने आपके लिए अभिशाप बनाया है। यदि इसके साथ आत्मविकास और आत्मसुखका दृष्टिकोण सन्तुलित होता तो वर्तमान संसारका मानचित्र कुछ दूसरा ही दीखता।

इस समय मानव-समाजके सामने जटिल समस्याओंका तांता सा जुड़ा हुआ है—यह सब जानते हैं। अन्न और वस्त्रकी कमी, तथा दारिद्र्य आदि समस्याओंको गिन-गिन कई व्यक्तियोंने सम्भवतः अंगुलियां घिस डालीं। किन्तु मेरी दृष्टिमें मानसिक समस्या जैसी जटिल है वैसी जटिल दूसरी कोई भी नहीं है। दूसरी समस्याएँ इसके आधार पर टिकी हुई हैं। मानसिक समस्याके मिटने पर अन्न, वस्त्र, दारिद्र्य आदि की समस्याएँ आज सुलझ सकती हैं। शिक्षामें आध्यात्मिक तत्त्व आ जांय, लोग संयमी पुरुषोंको सबसे महान् समझने लग जांय तो ये सब समस्याएँ उनके कारण अपनी मौत मर जांय—यह मुझे विश्वास है।

पुराने जमानेमें जब संयमको लोग धनसे अधिक मूल्यवान् समझते थे, तब जनतामें संग्रहकी भावना प्रबल नहीं होती थी। हिंसा, परिग्रह आदि जब जनताके जीवन-निर्वाहकी परिधिको लांघकर तृष्णाके क्षेत्रमें आ जाते हैं तब सामूहिक अशान्तिका जन्म होता है। इसलिए धार्मिक पुरुष उनकी इयत्ता करें—सीमा करें और दूसरोंसे करवावें—यही सबके लिए श्रेयस्-मार्ग है। 'अमुक परिमाणसे अधिक हिंसा मत करो, संग्रह मत करो' ऐसा व्यापक प्रचार किया जाय तो धर्मकी छत्रछायामें जगत्की सारी गुत्थियां सुलझ जायं, ऐसी मेरी धारणा है। विषयका उपसंहार करते हुए यदि मैं कहूं तो यही कहूंगा कि यदि धर्मका आचरण किया जाय तो वह विश्वको सुखी करनेके लिए सर्व शक्तिमान् है और यदि धर्मका आचरण न किया जाय तो वह कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए धर्मका अन्वेषण करनेवालोंको आत्म-नियन्त्रणका अभ्यास करना चाहिए—इसीसे धर्मकी सफल आराधना हो सकती है।

सर्वमस्ति-नास्ति किञ्चित्

आचार्य : श्री तुलसी गणी

शान्तिरशान्तिश्च उभेऽपि मानवनिर्मिते। अन्तर्जगति वहति सततं शान्तेः स्रोतः। तदपि बाह्यवस्तूनां मोहकाकर्षणेन लुब्धा जनाः तदर्जनाय विहितविविधयत्ना विपुलक्लेवरामुदभावयन्न शान्तिम्। जाता स्वरूपविस्मृतिः, निलीनञ्च सुखं शान्त्याः। कस्तूरिका मृग इव शान्तिमन्विच्छन्नितस्ततो भ्राम्यति वहिरसौ जनः, किन्तु तेनेति बोध्यम्—शान्तिः स्वयं साध्या स्वयञ्च साधनम्। न खलु सा क्वापि मनसो वहिस्तिष्ठति, न च बाह्य पदार्था अपि तत्साधनम्। जायमानानि इमानि धर्मसम्मेलनानि पुनरपि एतत्तत्त्वं लोकानां हृदयङ्गमीकुर्युरिति सततमभिलपे। तृष्णया कवलितः प्रचुरसंपदां प्रभुरपि न सुखमेधते, सन्तुष्टचेता अकिञ्चनोऽपि सुखं जीवतीति परिज्ञायते शान्तिरस्ति अपरिग्रहे। उक्तञ्च भगवता महावीरेण—नास्ति परिग्रहसदृशोऽन्यः पाशः प्रतिबन्धो वा प्राणिनाम्। गृहवासिनः सर्वथा स्युरपरिग्रहव्रतिन इति दुर्वितर्कम्, तथापि ते जीवननिर्वाहसाधनानि स्वल्पात्स्वल्प-तराणि कर्तुं प्रयतेरन्, संग्रहं अनर्थमूलञ्च मन्येरन्, तद् बोध्यं, नास्ति विश्वशान्तिर्दूरम्। समस्तेऽपि विश्वे स्वाधिकारान् उपयु-ञ्जानो न सुखं निद्राति मुहूर्तमपि, सर्वभूतेषु आत्मौपम्यं चेतो निदधत् नोद्विजते क्षणमपीति सम्बुध्यते शान्तिरस्ति अहिंसायाम्। अतएव "मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झं न केणई" इति भवति

शान्तिप्रियाणां महामन्त्रः। गृहस्था अपि अनर्थदण्डं न प्रयुञ्जीरन्, परेषामधिकारान् स्वीकर्तुं न प्रवर्तेरन्, तत्कुतोऽन्वेषणीया विश्व-शान्तिः। अनियन्त्रितेन्द्रियविषया, उच्छृङ्खलवाचः, असंयतमनसो हि जना कलहादिकं प्रसुवते इति सुबोध्यं भवति शान्तिरस्ति संयमे।

अतएव वीतरागवाण्याम्—"धम्मो मंगलमुकिट्ठं अहिंसा संजमो तवो" इति स्वरूपं निश्चितमभूद् धर्मस्य। अहिंसाऽपरिग्रह संयमात्मकं धर्ममन्तरा नास्त्यन्यच्छान्तेर्बीजं किञ्चिदिति स्पष्ट मुद्घोषयितुं शक्यम्। यदि च लोका जीवननिर्वाहसाधनानां विस्तारमेव शान्ति मन्वते तत्र तदर्थं धर्मः किञ्चित्करः। धर्मस्य तत्त्वं हृदयङ्गतं भविष्यति तद्दिनं मानव जातेरितिहासे अपूर्वं भावि।

यावत्पर्यन्तं विज्ञानस्य सत्यान्वेषणस्य प्रश्नोऽस्ति तावद् न तल्लक्ष्य दृष्ट्या धर्मतो द्वैततामेति, किन्तु विकासलक्ष्ये सुखीकरण-लक्ष्ये च इदमर्हति धर्मतो द्वैधम्। चेतनतत्त्वमुपेक्ष्य परं लक्ष्यं च गौणीकृत्य विज्ञानजगता न धार्मिकजगतः काचन हानिःकृता, अपितु विज्ञानं स्वस्मिन्नेव अभिशापरूपमकारि कामम्। यद्येतेन सह आत्मविकासस्य, आत्मसुखस्य वा दृष्टिकोणः संपृक्तोऽभविष्यत्त तत् साम्प्रतिकजगतश्चित्रमपि किञ्चिदन्यदेवाभविष्यत्।

इदानीं जनानां समुखे विविधा जटिलातिजटिलाः सन्ति समस्या इति स्वयं गम्यम्। तासु लोका अन्नवस्त्रालपत्वस्य दारि-द्र्यादीनाञ्च परिगणनमपि रचयन्ति यथावकाशम्। किन्तु मम दृष्टौ मानसिकी समस्या यादृशी जटिलास्ति तादृशी नान्या काचन परिलोक्यते। अन्यासामस्तित्वमस्ति तत्सत्तायामेव, अन्यथा स्युस्ताः सर्वा विलीनाः। यदि शिक्षायामाध्यात्मिकतत्त्वं प्रविशेत जनानां दृष्टौ संयमिन एव सर्वप्रधानाः स्युस्तद् विश्वसिमि किल

अल्पीयसापि काले न समस्याहेतुभूतानि क्रूरत्वसंग्रहममत्त्वादीनि स्वमृत्युना म्रियेरन्। प्राग्वर्तिनि समये लोका नाधिकं संग्रहादिपरा अभूवन् तत्कारणं तदानीं प्रवृत्तं संयममाहात्म्यमेव।

हिंसापरिग्रहादयो जीवननिर्वाहपरिधिमतिक्रम्य तृष्णाक्षेत्रे विहरन्ति तदा आसादयति जन्म सामूहिकी अशान्तिः। तेन धार्मिकाः तेषामियत्तां कुर्युः, कारयेयुरित्यस्ति सर्वतो भद्रःपन्थाः। निर्दिष्टपरिमाणादुपरि हिंसा न कार्या, संग्रहो न कार्यः, मन्ये एतादृश व्यापकप्रचारेण धर्मस्य छत्रच्छायायां जगत्समस्या स्यात् स्वयं मुक्तग्रन्थिः। उपसंहरन्नन्ते संक्षेपेण यदि वच्मि तद् वक्ष्यामीति यत् यदि धर्मस्य आचरणं तत् स विश्वं सुखयितुं सर्व-शक्तिमान्, यदि नास्ति तदाचरणं तन्नास्ति स किमपि कर्तुमर्हः। तेन धर्मान्वेषणार्थं प्रयतमानैरात्मनियन्त्रणार्थं प्रयतनीयमिति भवेत् सुफला धर्माराधना।

मुद्रक :
मदनकुमार मेहता
रेफिल्ड आर्ट प्रेस
आदर्श-साहित्य-संघ द्वारा संचालि
३१, बड़तल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता।

अशान्तिव्याकुलविश्वाय शान्तेः शुभसन्देशः

प्रदाता :

श्रीमद् तुलसीगणपतिः

नवमाचार्यः

श्री जैनश्वेताम्बर तेरापंथी समाजस्य

प्रकाशक :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी सभा

२०१, हरिसन रोड, कलकत्ता ।

मूल्य ।)

अशान्तिव्याकुलविश्वाय शान्तेः शुभसन्देशः

प्रदाताः—

श्रीमद् तुलसीगणपतिः

नवमाचार्यः

श्री जैनश्वेताम्बर तेरापंथी समाजस्य

संवति वैक्रमीये शशि-नभो-व्योम-नयनमिते

आषाढ़-कृष्णाचतुर्थी सरदार शहरे ।

ॐ नमोऽर्हद्भ्यः

प्रस्तावना

प्राप्त-विश्वधर्म-सम्मेलन (लन्दन) प्रेषितपत्रेण सभापतिना (छोगमलजी चोपड़ा) सानुनयं प्रार्थिताः श्री तेरापंथसम्प्रदायाधीश्वरा विद्वच्छिरोमणयः सज्ज्ञानपारावारपारीणाः, श्रीयुताः परमपूज्यास्तुलसीरामाचार्यप्रवराः सानुग्रहं विश्व-शान्त्युपायप्रदर्शनपूर्वकं सुकुमारकरकमललेखिन्या गीर्वाणगीः स्फुरितातिललितशब्दसन्दोह-सुन्दरकलेवरं प्राञ्जल मृदुलवाक्यन्यासो पन्यस्तभावगाम्भीर्य चैतन्यं, "अशान्तिव्याकुल विश्वाय शान्तेः शुभसन्देशः" इति शीर्षकं निबन्धंव्यरीरचन्निति प्रस्तावनम् ॥

अशान्तिव्याकुलविश्वाय शान्तेः शुभसन्देशः

अयि शान्त्यन्वेषकाः! इदानीन्तनं जगत् सर्वतो मुख्याऽशान्त्या व्याकुलमस्ति इदं वृत्तं तु स्पष्टमेव यतो गणनागतान् सन्तोषिणो दृढव्रतिनः साधुजनान् परिहाय प्रायेण सर्वेऽपि लोकाः स्वजीवनं महत्याम शान्तौ विषम-परिस्थितौ च व्यतिगमयन्तो दृरीदृश्यन्ते। एतादृगशान्तेर्बहूनिकारणानि भवितुमर्हन्ति—परं साम्प्रतकालीनायाऽशान्तेस्त्वेकमेव कारणमनुभवगोचरीकुर्मः। तदस्ति महाभीषणप्रलयकारि विश्वव्यापि युद्धम्। यद्यपीदं महायुद्धं विश्वैक-भागवर्त्त्यैव तथाप्येतद् विषमिश्रितो वायुराधुनिक वैज्ञानिक यन्त्रनिकरैः समग्र-जगद्दिग्दिगन्तकोणे व्याप्नोतीति विश्वव्यापि युद्धमिति निगद्यते। युद्धं हि किल पारस्परिकः संघर्षः। यत्र कुत्रापि पारस्परिके संघर्षेऽशान्तिमसंतोषं विनाशश्च विहाय न कश्चित् वास्तविको लाभो विभाव्यते।

युद्धस्य प्राचीनानि कारणानि

यानि किल युद्धानि प्राक्काले प्रावर्तिषत तानि प्रायशः काञ्चन कामिनी-भूमी रूप-कारणत्रयपूर्वकाण्येवासन्। यथा रामरावणयोर्महान् संग्रामो-ऽजनिष्ट, यस्य सविस्तरं वर्णनं रामायणाभिधे ग्रंथे निहितमस्ति। तस्य कारणं यदि त्रिलोकयामः एकैव महासती सीता। जैनसिद्धान्तवर्णितः कौणिक-चेटकयोर्महामहीशयोर्महासंग्रामो यो भूरिकालपर्यन्तं प्रचलितः, 'रथमुशल' "शिलाकण्टक' नामानौ द्वावेव च सङ्गरौ ययोर्मनुष्याणामशीतिलक्षाधिका कोटिर्वासरद्वयेनैव मृत्युमुखमाप्ता, यस्य (कौणिकचेटकमहासंग्रामस्य) भीषणतां द्योतयतस्तस्य मुख्यं निबन्धनं हस्तिहाररूपं धनमेव। कौरवपाण्डवयोश्च प्रसृततरः समरः योऽनेकासामक्षौहिणीना क्षयकारी, यस्मिन्ननेकेषां वीराणा महारथिसैनिकानां प्राणा बलिरूपं व्यगाहन्त, अर्जुनपुत्रो वीरोऽभिमन्युरसमो यस्मिन्नन्याय-मृत्युना मृतः, यस्य स्वरूपं संदर्शयितुं हि पाण्डवचरित्रस्य निर्माणमजायत, तन्निमित्तभूतासीत् भूमिः। यदा च पाण्डवा द्वादश वार्षिकमरण्यवासं त्रयोदशे वर्षे प्रच्छन्न-निवासं च विधाय दुर्योधनान्तिके ग्रामपञ्चकमेवायाचिषत, का नाम हानिरभविष्यत् दुर्योधनस्य यद्दास्यत। तेन महाप्रलयकारिणा भीषणेन समरेण विश्वमस्पृष्टमस्थास्यन्। पाण्डवा

अप्यथवा त्रयोदशवर्षवत् शेषमपि स्वजीवितं व्यगमयिष्यन्। परन्तु पृथिव्याः कार्यमेवैतादृक्। यस्याः कृते मनुष्याः स्वकर्त्तव्याकर्त्तव्ययोः कथमपि विस्मरन्ति। अस्तु—

युद्धस्यार्वाचीनानि कारणानि

साम्प्रतकालीनस्यापि युद्धस्य धन-धरारूपं कारणद्वयं तु वरीवर्त्त्येव। स्त्रियाः कृते पुनर्जायमानं तादृक्षमाहवं नैव श्रुतिगोचरं विद्मः। किन्तु तत्संख्या-पूरकोऽन्योस्त्येकः सोयं सिद्धान्तस्य किंवा स्वमन्तव्यस्य प्रचारः। यद्यपि वास्तविक सत्यसिद्धान्तानां प्रचारोप्यत्यावश्यकीयस्तथैव च प्रतिप्राणिहृत्-प्राङ्गणेऽविनाशि सद्धर्ममुद्रा-मुद्रणमप्यवश्यम्भावि किन्तु भाव्यमेतदुपदेशेन शिक्षयाऽनवद्य-प्रचारैश्च। यदि कोऽपि सद्धर्मप्रचाराय कलहं युद्धं प्रणाशि यंत्र-शस्त्रादीन् प्रयुञ्जीत स निश्चयेन धर्मं पातयेत्। भगवन्महावीरप्रभृतयः सत्यधर्मस्य महान्तः प्रणेतारोपि अस्मिञ्जगति प्रादुर्बभूवुः। सद्धर्मप्रचाराय च प्रसारिता क्रान्तिरहिंसा-धर्मश्च विश्वव्यापी सम्पादितः। केवलं निज-व्यक्तित्वप्रभावेण निरवद्यप्रचारेण वा। न तु बलप्रयोग शाठ्य-विग्रह-संग्रामप्रलोभनादिभिः। बलप्रयोगप्रलोभनादिभिस्तु साधनैः कस्यचिच्चौरस्य चौर्यत्याजनम् हिंस्रव्यभिचारिणोश्च हिंसाव्यभिचारापनयनमपि न धर्मप्रचारः। किन्त्वधर्मप्रचारकक्षायां प्रविशति, तच्च कालान्तरेऽशान्तेर्विग्रहस्य च कारणता-मापद्येत। एतदतिरिक्तान्यन्यान्यपि कतिचित्कारणानि अर्वाचीनस्य युद्धस्य सन्ति, तेष्वेकं वार्तमानिकं शिक्षाप्रणाली। वार्तमानिकशिक्षापद्धत्यां केवलं भौतिकाभिसिद्धयो हि लक्ष्यीभूतास्तिष्ठन्ति, नाध्यात्मिको विकासः, यश्च शिक्षाया असाधारणो लक्ष्यो भवितुमर्हति। प्रारम्भतोऽप्यपरिपक्वमस्तिष्कान् बालानेष एव पाठः पाठ्यते, नास्त्यात्माभिधानं किञ्चित् सनातनं वस्तु। वनौकसां विकसितावस्था हि—पुमान्। आत्मोत्थानस्य विकासस्य वा न हि कोऽपि साधारणः पन्था निदर्श्यते। एतेन शैशवतोऽपि बालानां मध्ये-ऽविनयोच्छृङ्खलतोदण्डताहंवत्ताद्यवगुणाः स्वगृहं विरचय्य तत्रस्थेमानमास्ति घ्नुवते। ततः प्रभृति ते च बालाः पदे पदे कलहमीर्ष्यां कदाग्रहञ्च कर्तुं निःसंकोचा भवन्ति। अपरञ्च विग्रहकारणं वैज्ञानिकैराविष्कारैः सह नाना प्रकाराणां महाप्रलयसम्पादकानां शस्त्राणामाविष्कृतिस्तस्याश्च दुरुपयोगः।

यद्यपि विज्ञानं न किमपि गर्ह्यं वस्तु, न च तज्जन्या आविष्कारा अपि, परन्तु तत्प्रयोगे पूर्ण-सतर्कतावश्यकीया ।

जैनसिद्धान्तेऽपि सुविहिता एका तेजोलब्धिनाम्नी शक्तिः । तस्याः साधनान्यपि तत्र वर्णितानि । यस्य तपोधनस्य पार्श्वे विद्यमाना सा शक्तिः स प्रभवति एकस्थानस्थोऽपि तच्छक्तिप्रयोगेण षोडश देशान् भस्मसात्कर्तुम् । किन्तु तत्सार्धमेषापि शिक्षा तस्मै सम्यक् प्रदीयतेऽर्हद्भिः एतच्छक्तिप्रयोक्ता उत्कृष्टतोऽनन्तं कालं यावत् संसारचक्रवाले परिभ्रमणं कुरुत इति तस्माद्धेतोर्भव-भीरुस्तच्छक्तिशाल्यपि स तपस्वी तत्प्रयोगे सदा संकुचित एव तिष्ठति । न चैवंभूतं शिक्षणं वैज्ञानिकाविष्कारकर्तृषु । न च तदुपयोगेपि एतादृशो विमर्शः । अतः प्रमाणातिरेकादाविष्कारादपि विग्रहादयोऽतिमात्रं प्रकटी-भवन्ति । प्राक्तनयुद्धेभ्यो वार्तमानिकयुद्धाना भीषणता । यद्यपि पूर्वकालेपि युद्धान्यभुवन् सम्प्रत्यपि बोभूयन्ते अतएव एष्यत्यपि न भविष्यन्ति, इति न नाम निर्णेतुं शक्यं । यतो राग-द्वेषेर्ष्यादयो दोषा जगति जाग्रति यावत् तावत् केनापि रूपेण युद्धमपि न नामशेषता प्राप्स्यति । परंतु प्राक्तनयुद्धेभ्य· साम्प्रतकालीनानि युद्धान्यतिविषमाणि प्रलयकारीणि च । प्राक्तनयुद्धेषु प्रायेण सैनिकानामेव योद्धृणा हत्याऽविद्यत, वार्तमानिकेषु तु तेषु दूरे तिष्ठंतु सैनिकाः, नागरिकाणां, पान्थाना, बाल-स्त्री-वृद्ध-रुग्णानामपि संहारः सम्भूय-मानः श्रुतिगोचरो दृग्गोचरो वा भवति । प्राचीनेषु युद्धेषु पुना रथिकेन रथी, अश्वारोहेणाश्ववारः, निषादिना निषादी, पदातिना पदाति·, नैस्त्रिंशिकेन नैस्त्रिंशी, धानुष्केन धानुष्कः एवायुध्यत, सोप्याहूय परं नत्वनाहूय रभसा । अत्र प्रकरणे तृपृष्ठाभिधस्य वासुदेवस्योद्धरणं सुचारुरूपेण जाघटीति । कति-चिदेतादृशा अपि योद्धारोऽविद्यन्त विश्वेऽस्मिन् यैः संग्रामेप्येवं प्रतिज्ञातं संमुखीनः शत्रुर्यदि स्वं प्रति वाणं प्रक्षिपेत् तदैवाहं विशिखविक्षेपं विधास्ये नान्यथेति । अस्मिन् प्रसंगे वरुणस्य नाग दौहित्रस्य वर्णनं वर्णनार्हं तथैव च महाराज चेटकस्यापि दृष्टान्तो दृश्यः । अतएव युद्धान्येकान्तरूपेण पाप-मयान्यपि नीतिनिपूर्वकत्वेन तानि धर्मयुद्धानीति गीयन्ते स्म ।

आधुनिकेषु तु तेषु एक एव नरसंहारमात्रं लक्ष्यमभिलक्ष्यते, एतस्माद्धेतो-रेतानि युद्धमित्यकथयित्वा महाप्रलयं चेदभिदध्महे तदापि नात्युक्तिमव-

धारयामः । एतद् युद्धजन्याऽशान्तितो हि आक्रान्तं भूत्वा समस्तं जगदिदानीं शान्तेर्मार्गणं कुरुते विश्वधर्मसम्मेलनमपि एतदर्थमेव पूत्करोति यतः सर्वेषामपि धर्माचार्याणामिदमिदानीन्तनं कर्तव्यमस्ति । ते हि विश्वशांतिप्रदां निजां वाचं प्रति प्राणिकर्ण कुहरान्तः प्रक्षिपेयुरिति । अतएव अहं जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ सम्प्रदायस्य नवमाचार्याधिकारापन्नत्वेन निःशेषं संसारं शान्तेः शुभसन्देशं श्रावयितुं समुद्यतोऽस्मि । अहमाशासे संसारस्य प्रत्येकः सहृदयः शान्तिगवेषकः सज्जनगणोऽमुं शांतेः शुभसन्देशं दत्तचित्ततया श्रोष्यति मंस्यते जीवनस्य प्रतिकार्ये एतस्यावलम्बनं करिष्यति च पुनरेतद्द्वारा स्वं स्वमात्मानं शान्ति सदने स्थापयिष्यतीति । शान्तेः परिभाषा तद्भेदाश्च । तमाह्लादं शान्तिं ब्रूमहे वयं येनात्मनि कर्म पुद्गल प्राग्भारदूरीभवनाल्लाघवं जागरणं वा संपद्यते । अथवाऽत्मनो मूलस्वरूपस्यावबोधनं शान्तिरुच्यते । एकान्यापि शान्तिः संसारे संसारिभिरभिधीयते, या पौद्गलिकाभीष्टवस्त्ववाप्तिसम्बन्धेन प्राणिभिरनुभूय-माना शारीरिकी मानसिकी वा क्षणिका परितृप्तिः । सा च नाम्ना शान्तिरपि अशान्तिहेतुभूतत्वात् वास्तविकरूपेणाशान्तिरेव । अतः प्राङ् निर्दिष्टा शान्तिरेव शान्तिगवेषकाणां श्रेयस्करी । सापि द्विधा व्यक्तिगता सामूहिकीश्च उत आंशिकी परिपूर्णा च । पूर्णायास्तु तस्या अनुभवं मोक्षस्थिता एवात्मनः कर्तुं प्रभवन्ति । अपरस्यास्तु संवेदनं समुचितैः साधनैरितरेपि मनुष्यादय कर्तुं पारयन्ति । अन्यश्च व्यक्तिनिष्ठाया एव शान्तेरेव सामूहिकी शान्ति-रवाप्तुं शक्याः । शान्तेरुपायास्तत्र प्राङ् महाव्रतनिरूपणम् । जैनदर्शनस्य तु महानुद्देशो लक्ष्यश्च तच्छान्ति प्राप्तुमेव । निम्नाङ्किताश्च तस्या उपायाः—

(१) महाव्रतानि (२) व्रतानि (३) सम्यक्त्वं च ।

महाव्रतानि

महाव्रतानि संख्यया पञ्चैव तानि च यथा—सर्वथा मनोवाक्कायैः कृतकारितानुमतिभिश्च सर्वप्रकारस्य प्राणातिपातस्य विरमणं प्रथमम् । एवं सर्वथा मृषावादविरतिर्द्वितीयम् । सर्वथा अदत्तादानस्य (चौर्यस्य) अनाचरणं तृतीयम् । सर्वथा मैथुनाऽनासेवनं चतुर्थम् । सर्वथा परिग्रहाऽग्रहणं यद्वा धनधान्यादिसञ्चयाकरणं तन्ममत्वविरतिर्वा पञ्चमम् । उपर्युक्तानां पञ्च महाव्रताना परिपालनेन सा शान्तिः शीघ्रातिशीघ्रं प्राप्तुं शक्या ।

व्रतानि

तेषां महाव्रतानामनुशीलनकर्त्ता जैनदर्शने "जैनमुनि" रित्यभिधानेन ध्वन्यते। तत् कृते च कतिचिदुपनियमा अपि कठिन-कठिनतमा वर्तन्ते। अतोऽयं पन्थाः साधारणानां व्यक्तीना न सुगमः। एतदर्थं द्वितीयोध्वा तदपेक्षयातिसरलः सुसाध्यः प्रतिपुरुषोपयोगी च। तद्दिग्दर्शनमत्यावश्यकम-भिज्ञाय विधीयते। तदस्ति व्रतम्। व्रतविवर्णनम्। व्रतानि गणनाया द्वादश सन्ति। तेषु पञ्चाणुव्रतानि, त्रीणि गुणव्रतानि, शेषाणि च शिक्षाव्रतानि। तेषा साक्षेपिकं विवेचनमित्थम् :—स्थूलात् प्राणातिपाताद् विरमणं किंवा यथाशक्य जीवहिंसानिवृत्तिः प्रथममणुव्रतम् (१) एवं यथासाध्य मृषावादा-ऽवदनं द्वितीयम् (२) यथोचितं चौर्याऽनाचरणं तृतीयम् (३) यथार्हं मैथुना-ऽनासेवनं चतुर्थम् (४) यथायोग्यं परिग्रहनिग्रहः पञ्चमम् (५)। एतानि पञ्चापि महाव्रतानामणुरूपत्वादणुव्रतानि। दिग्व्रतं षष्ठम्—षट्सु दिक्षु गमनागमनयो-र्यथाशक्यं प्रमाणीकरणम् (६) भोगोपभोगव्रतं सप्तमम्—आवश्यकतातिरेकाणां खाद्य-पेय-परिधानीय-प्रावरणीयवस्तूना नियन्त्रणम् (७) अनर्थदण्डविरतिरष्टमम्—निरर्थकस्य कस्यापि पापस्य परित्यजनम् (८) त्रीणि त्वेतानि अणुव्रतेषु गुणवर्धक-त्वेन गुणव्रतानि। अष्टावप्येते नियमा यावज्जीवनकृते एव कर्तव्याः। सामा-यिकव्रतं नवमम्—आमुहूर्तात् समस्तानां पापकारिप्रवृत्तीना परित्यागेन साधु-वृत्तेः स्वीकरणम् (९) एष च नियम एकस्मिन्नपि दिने सकृदनेकवारं च भवनार्हः। देशावकाशिकं व्रतं दशमम्—प्राङ् निर्दिष्टानामपि नियमानां यथेप्सितकालाय पुनः सङ्कोचनम् (१०) पोषधव्रतमेकादशमम्—एकं रात्रिन्दिनं यावत् चतुर्विधाहार परित्यागपूर्विका समस्तपापाचरणानां निवृत्तिः साधुवृत्ते-र्धारणं वा (११) अतिथिसंविभागव्रतं द्वादशमम्—निजखादनपानाद्यर्थनिर्मितं यच्छुद्धं वस्तु तस्य विभागस्य पूर्वोक्त पञ्च महाव्रतपरिपालकेभ्यः साधुभ्योऽर्पणम् (१२)। चत्वार्येतानि शिक्षास्पदीभूतत्वात् शिक्षाव्रतानि। एतेषां द्वादश नियमा नामाराधको जैनदर्शने देशव्रती श्रमणोपासकः—श्रावकः इत्यादिभिः शब्दैः सम्बोध्यते। एते च द्वादश नियमाः शान्तिलिप्सूनामत्यन्तोपयोगिन सन्ति। प्रति नियमे च शान्तसुधानिष्यन्दः समवलोक्यः। एतेषा च विस्तृता व्याख्या "उपासक दशांग" नाम्नि जैनागमे· भिक्षुविरचिता "बारह व्रत चौपई" किंवा

"श्रावकव्रतधारणविधि:" इत्यादिषु पुस्तकेषु दर्शनीया, विस्तर भयात्तु नात्र विविच्यतेऽस्माभि:।

सम्यक्त्वम्

यद्यपापि शरणिद्धु:श्रेयाप्रतिभाति केषांचित् तर्हि तार्तीयीकत्व मस्माभि: संदर्शितेषु वर्त्मनि विधेय एव चरणविन्यास:। तदस्ति यथावस्थिततत्त्वश्रद्धानम्। लोकेस्मिन्नस्ति एकं चेतनाभिधंवस्तु जीव:। लक्षण स्वरूप भेदैस्तदवगति: कार्या। एवं चेतन विपक्षोऽचेतन: अजीव:। चेतनस्य पौद्गलिक सुख दु:खयो: कारणे पुण्य-पापे। चेतनस्य विजातीय पौद्गलिक वस्तु सम्बन्धस्य हेतु: आश्रव:। तत् संयोगस्यावरोध: संवर:। चेतन संपृक्तस्य विजातीयस्य वस्तुन: पार्थक्यम् निर्जरा। चेतनविजातीययोरन्योन्याश्लेपोबन्ध:। सामस्त्यरूपेण विजातीयवस्तुनो विश्लेपात् चेतनस्य मूलस्वरूपावस्थानं मोक्ष:। इत्यादि तत्त्वानि हृदये संस्थाप्य तेषां तात्त्विकता या उपरि दृढविश्वास एव यथार्थतत्त्वश्रद्धानम्। जैनदर्शने चैतत् सम्यक्त्वशब्देनाभिधीयते। सम्यक्त्ववन्तोपि मनुष्या: प्रतिसमयं परपीड़ापराङ्मुखास्तिष्ठन्ति तत एव तच्चेतसि कलहकदाग्रहादावौदासीन्यमवतिष्ठते। इत्येवमवधार्य यावदधिक: सम्यक्त्वस्य प्रचार: क्रियते, तावती एव शान्तिवृद्धिस्तावानेवाशान्तेर्मूलोच्छेदो विभाव्यताम्। उपर्युक्तास्त्रय उपाया एव विश्वशान्तये अलं भविष्यन्ति। किञ्च सत्स्वप्येतेषु पूर्णशान्तिसाधनेषु यदि साम्प्रदायिकत्वेन केषाचित् बाधा सम्भाविनी तर्हि निम्नाङ्कितानां (सर्वधर्मसाधारणानामखिलजगन्मान्यानां) कतिचिन्नियमानां निर्देशं विदध्महे, येषु साम्प्रदायिकताया गन्धोपि न लभ्यते, अशान्त्यामयकृतेऽनिवार्यौषधत्वमपि च पोस्फुरीति। तेचेमे।

समस्तविश्वमान्यानि शान्ते: साधनानि

(१) विश्वस्मिन्नपि विश्वे अहिंसाया यावच्छक्य: प्रचारो विधेयस्तथैव च हिंसायां हार्दिकी घृणा समुत्पादनीया। "निजवदन्येषामपि जीवनमेव वल्लभं न च मरणं" इत्येष पाठ: सर्वानपि पाठनीय: येन शान्तेर्बीजारोपणं भूयात्।

(२) क्रोधोभिमानो दम्भोऽसन्तोपश्च चत्वारो हि एतेऽशान्तेर्मूलानि। यावन्तो विग्रहा वेविद्यन्ते जगति तेषां सर्वेषामुपरि एतस्य कषायचतुष्कस्य

प्रभावोस्ति नियमेन। अतो यथासाध्यं एतेषा ह्रसिमानं कर्तुं प्रयतितव्यं सर्वैरपि।

(३) वार्तमानिक्याः शिक्षाप्रणालेः परिवर्तनमत्यावश्यकम्। केवलं भौतिकीनामभिसिद्धीनामेव हि लक्ष्यमरक्षयित्वा आध्यात्मिकताया मुख्यं लक्ष्यं रक्षणीयम्। एतत् कृते च राष्ट्रीया आन्तराष्ट्रीया च चेष्टा पूर्णोपयोगिनी।

(४) भाविनी मानवसमाजस्य या व्यवस्था सा नैतिकतां सदाचारपूर्णनियमांश्च परिहाय न केवलं स्वार्थपूर्णनियमैः निश्चेतव्या।

(५) वैज्ञानिकानामाविष्काराणामुपयोगो भौतिकाभिसिद्धीनां कृते न विधातव्यः एतद्धि न भवितुमर्हं चेत्तर्हि युद्धक्रियायां तु तेषां प्रयोगो निश्चितमेव निरोधनीयः।

(६) राष्ट्रीयप्रेमापेक्षया विश्वबन्धुत्वस्य प्रचारोऽधिकादप्यधिकः सम्पादनीयः। आर्थिकीं राजनैतिकीं च प्रतिद्वन्द्वितामपाकर्तुं पूर्णप्रयासशीलै-र्भवितव्यम्।

(७) आवश्यकतातोऽधिकस्य सञ्चयकरणस्य या लालसा तस्या अल्पत्वं कार्यं, तथैव हि पारस्परिकीं स्पर्धामीर्ष्यामत्यधिकसत्ताप्राप्तीच्छां परसम्पत्तौ च लिप्सुतां च दूरीकर्तुं प्रयत्नः।

(८) दुर्बलान् दलितान् जातिवर्णविशिष्टांश्च विज्ञाय तेषु अन्यायोऽत्याचारो वा नाचरणीयः। न्यायोऽपक्षपातिता मनुष्यत्वस्य च मूलसिद्धान्ता यथा तथा स्वजीवनेऽधिकतरा विकसिता भवेयुस्तथा प्रवर्तितव्यम्।

(९) बलप्रयोगेण शस्त्रप्रयोगेण वा कस्यापि मतस्य धर्मस्य वा प्रचारो नैव विधातव्यः। किञ्च काचिदपि वार्ता केनाप्युपदेशेन कयाचिच्छिक्षया वाऽवशितुं ग्रहीतुं वा सुलभा न तथा बलप्रयोगाद्यैः। अतो धर्मप्रचारायापि बलात्कारिता नाश्रयणीया, तथैव च धार्मिकानां सत्त्वानामपि पूर्णैः निरवद्योद्योगैः संरक्षणंसम्पादनीयमेव।

उपरि कथिताःनव नियमाः समस्तसंसारस्य कल्याणाय बद्धकक्षाः कष्टसाध्या अपि महालाभप्रदाः सन्ति। यद्येतेषामाचरणं पूर्णरूपेण विधास्यन्ते सुजनास्तर्हि नाशास्महे एव किन्तु विश्वसिमोपि वयं समग्रेपि संसारे शान्तेः साम्राज्यम् शान्तेर्मूलोच्छेदः शीघ्रातिशीघ्रं भविष्यत्येव। अन्यच्च त्रिधर्म-

घोषणायां प्रोटेस्टेण्ट, केथोलिक, यहूदिमतानुगैर्घोपिता तस्या च सप्त नियमा निर्णीतास्ते च किल प्रायेण सांसारिकप्रवृत्तिसम्बद्धा एव वर्तन्तेऽतो जैनसिद्धान्त-नियमानुसारेण तेषामनुमोदनं तदर्थञ्च स्वसम्मतिप्रदर्शनं जैनमुनीना न कल्पते निजनियमानुरोधात्। एतदर्थमेवैतेषां निवृत्तिप्रधानानां विश्वशान्ति-प्रदायकानां नव नियमानां निर्मितिः कृताऽस्माभिरित्यलं विस्तरेण।

एष च शान्तिशुभसन्देश समस्त जैन श्वेताम्बर
तेरापन्थ सम्प्रदायेणाभिमत एव।

परिशिष्ट

(टिप्पणम्) तृप्रष्ठेति—स च यथा आसीदस्यामवसर्पिण्यां पोतनपुर नाम्नि नगरे प्रजापतिनामधेयो राजा। तस्य च तृपृष्ठाभिधस्तनुजः। स च भगवतो महावीरस्य चतुर्विंशतितमतीर्थङ्करस्यैव जीवः अस्मिन् भरते प्रथमो वासुदेवोऽभवत्। तदानीमेव एकस्य तुङ्गी नाम पर्वतस्य गुहायामेको महा-पराक्रमशाली अतिभयानकः पञ्चाननः प्रतिवसति स्म। तन्निकटप्रदेशे एवाऽश्व-ग्रीवाख्यस्य प्रतिवासुदेवस्य शालिशाकिनमविद्यत। यः कोपि पुमान् तद्रक्षार्थं तत्रावसेत् तमेव स सिंहः स्फुरत् पुच्छाच्छोटः क्रुधारुणयुगललोचनो द्रुतं काल-धर्मं गमयेत्। एकदा च राजाश्वग्रीवः सभ्यजनसंभृताया संसदि स्वर्णरत्नाञ्चितं सिंहासनमलंचक्रे, तावत् समागादेको गणकः चिरंजय, चिरचिरं नन्देति आशीर्वादं वितीर्य भूभृते यावत्तिष्ठति तावन्नृपोऽभाषिष्ट—कोऽसि भो भद्र! क्व वास्तव्यस्त्वम्? भालस्थलतिलकाद्यैः सुविदितैश्चिह्नैस्तु ज्योतिर्विदिवाभासि। इत्याकर्ण्य गिरं नरपतेः सोपि ओमिति ध्वनिना तत् स्वीकृतिं चक्रे। राजा-ऽपृच्छत्, यदि नैमित्तिकस्त्वं, किं भाविवृत्तं वर्णयसि? उत भूतम्? भूतवृत्तान्त-वादिनस्तु विलोकिता बहवो ज्योतिर्विदः परन्तु यथातथ्येन भविष्यन्तं वर्णयमाना अल्पीयान् स एव। तदा बाढस्वरेणावादीन्निमित्त वद, महीपते! परीक्षणीयोहं यथेप्सितेनानुयोजनेन। भूपालेनाभाणि, यदि त्वं वेत्सि तर्हि कथय कस्य करेण मे मृत्युः? निगदितं नैमित्तिकेन, स्वामिन् अन्येन केनापि प्रश्नेन भाव्यम्। प्रतिवासुदेव पुनः पुनर्हठाग्रहीव तमेव प्रश्नं पप्रच्छ। तदा दैवज्ञोपि स्पष्टमभाषिष्टाश्वग्रीवमरणकारणं, यतस्तुङ्गीपर्वतगुहावस्थायिनं केशरिणं यो हनिष्यति निश्चितमेव तत् करेण भवदायुः पूर्तिर्भाविनी। इति निशम्य व्यथाकुलो विश्वेश्वरो विसृज्य तमादेशिनं तन्निर्णयार्थं तुङ्गीशैल पार्श्वस्थ शालिक्षेत्ररक्षायै सर्वेपि निजाज्ञानुवर्तिनो राजानो नियोजिताः। प्रतिदिनं एकैकेन राज्ञा तद्रक्षा कर्तव्या इति। एतद् महिपशासनं शिरोधार्यं कृत्वा सर्वेपि राजानो निजनिजक्रमायातां क्षेत्ररक्षां व्यधुः। यदा च प्रजापती राजा स्वावसरे क्षेत्ररक्षार्थं गम्यमानो विलोकितस्तृपृष्ठेन कुमारवासुदेवेन पृष्टं च तातपादाः क्व व्रजन्तीदानीम्? तदा पित्रा सर्वो वृत्तान्तः श्रावितः। श्रुत्वा च

तृपृष्ठः क्षेत्ररक्षार्थं ताताज्ञया हस्त्यश्वरथपदातिपरिवृतः स्वयमयात्। मार्गे च तृपृष्ठेन पृष्ठः कश्चित् पूरुषः अरे। यस्य भयादश्वग्रीवेण सर्वे नृपा नियोजिताः क्षेत्रावन्यवनार्थं स कीदृग् बलिष्ठोऽस्ति हरिणेन्द्रः? कियती च तस्यानीकिनी? कियास्तस्य परिच्छदः, किं तस्य वाहनम्? किं स खड्गी दण्डी नैस्त्रिंशिको धनुर्धरो वा। कांस्कांश्च प्रयोगान् युद्धसमये प्रयुङ्क्ते स्म? इत्याकर्ण्य किञ्चिद् विहस्य स नरः प्रत्युत्तरति। स्वामिन्! सतु केशरी एक एव न तस्य वाहिनी, न च वाहनं, न तस्य परिवारः, आयुधानि च तस्य करचरणनखरा एव सन्ति। परन्तु किं वर्ण्यते तस्य बलीयस्ता। यत उक्तम्—"एकोहमसहायोऽहं कृशोऽहमपरिच्छदः। स्वप्नेप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते॥" श्रुत्वैतद् वचनं चिन्तयति कुमारः, अहो सचैकः, अहं पदातिपरिवृतः, स निर्यानः अहं च रथी, स निःशस्त्रः अहं च सशस्त्रः, यद्येतेन रूपेणाहं तेन सार्कं योत्स्यामि तर्हि नीतिविरुद्धमिदं युद्धम्। नाहं नीतिभ्रष्टोस्मीति कृत्वा सर्वांस्तत्रैव परित्यज्य स एक एव बली बालस्तेन केशरिणा सार्कं तद्रूपेणैव विग्रहं विधाय क्षणेनैव जीर्णचीवरखण्डवत् तदोष्ठावुत्पाट्य जीविताद् व्यपरोपयामास, आवेदितं चाश्वग्रीवाय प्रतिवासुदेवाय मया तव सर्वोप्युपद्रवः प्रशान्तीकृतः। सुखं स्थितो भुंक्ष्व शालीनन्यानपि च भोजय। तवोपद्रवसंहर्ता विद्यमानस्यहं सदा अश्वग्रीवोप्येवमजानाद् यद्भयमेव मम जीवितापहारीति।

वरुणोति वरुणदृष्टान्तो यथा :—

वैशाल्यां नगर्यां एको वरुणाभिध क्षत्रियो नागदौहित्रः परिवसति स्म। स च समृद्धिमान् धार्मिकस्तत्वज्ञो यथाशक्ति श्रावकव्रतानि परिपालयन् यथोचितधर्मकर्मपरायण सुखेन स्वजीवनं व्यतियन् विचरति स्म। यदा च कौणिकचेटकयोर्महान् सङ्गर समजायत तदा राजाभियोगेनायमपि युयुत्सु संग्रामेऽगमत्। स च स्ववाहिनीवेष्टितः, प्रसृमरसमराङ्गणे समाव्रज्येममभिग्रहमग्रहीत्। यतोस्मिन् भीषणे रणे युद्धार्थमुपागतं मा प्राक्कोऽपि बाणास्त्रशस्त्रे प्रहरेत् तदैवाहं विशिखविक्षेपं कृत्वा तं हनिष्यामि नान्यथेति।

इत्थं प्रतिज्ञाय स यावता कलिकोलाहलाकुले समाह्वये तिष्ठति, तावदेको धनुर्धरः कक्षीकृतकलापस्तमालापयति वरुणम्। अरे! कोऽसि त्वं, किमर्थ-

मुपागतोऽत्र ? अहं प्राथमिकया कलहायमानसर्वसैनिकसमूहे, कलकलरवापूरित धराधरणीधराम्बरव्यूहे, शूरसमुल्लासिसमरचत्वरे, चेदितस्ततो विक्षिप्तचित्तवद् विलोकसे। यदि नामास्ति काचित् त्वयि समरशक्तिस्तर्हि कोदण्डमण्डितकरेण वाणविक्षेपं कुरुष्व, वीक्षेहमपि तव भुजादण्डप्राचण्ड्यम्। आकर्ण्य तद् वाचं वरुणोऽवक् भो भद्र! त्वमेव पूर्वं स्वाशुगाश्चालय, पश्चादहमपि दोर्दण्ड-चण्डतां दर्शयिष्यामि। श्रुत्वेति सत्वरं स स्ववाणेन मर्माविधा वरुणं विध्यत्। तदानीमेव शिलीमुखसंपीडितोपि क्रुधारुणो वरुणस्तन्मार्गितेन एकेनापि मार्गणेन तं धनुर्धरं प्राणविरहितं व्यधात्। स्वयमपि तद् वाणविद्धो जीविताशाम कुर्वाणः, संग्रामात् प्रत्यागत्य व्यजनं स्थानं विलोक्य, शुष्कतृणसंस्तारकं विरचय्य, परमेश्वरं महावीरं च प्रणम्य, यावज्जीवं सर्वपापप्रत्याख्यानं विधाय समाधिपूर्वकं पञ्चत्वमापत्, स्वर्गं च सनाथीकृतवान्॥ इति शम्॥

इति श्रीमत्तुलसीरामाचार्यवर्यसन्दब्धो विश्वशान्त्युपाय-
निवन्ध· सटिप्पण· पूर्तीमशीश्रियत्॥

प्रकाशक :
मंत्री
श्री जैन श्वे० तेरापंथी सभा
२०१, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक :
एन० एस० सुराना,
सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स
४०२, अपर चितपुर रोड,
कलकत्ता।

विश्व-शान्ति और उसका मार्ग

प्रवक्ता :

श्रीमद् तुलसीरामजी महाराज

आचार्य :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय

प्रकाशक :

श्रीजैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

२०१, हरीसन रोड, कलकत्ता।

विश्व-शांति और उसका मार्ग

प्रवक्ता :

श्रीमद् तुलसीरामजी महाराज

आचार्य :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सम्प्रदाय

[शान्तिनिकेतनमें होनेवाले विश्व-शान्ति-सम्मेलन
सन १९४९ के लिये प्रदत्त]

प्रकाशक :

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

२०१, हरीसन रोड, कलकत्ता ।

प्रथम संस्करण—२०००

मुद्रक :

मदनकुमार मेहता

रेफिल आर्ट प्रेस

(आदर्श-साहित्य-संघ द्वारा संचालित)

३१, बडतल्ला स्ट्रीट,

कलकत्ता ।

विश्व-शान्ति और उसका मार्ग

"सब जीवोको आयुष्य और सुख प्रिय है—दु ख और वध अप्रिय है, इसलिए किसी भी प्राणीका वध नही करना चाहिए, सताना नही चाहिए—यही ध्रुव सनातन धर्म है ; इसीका नाम अहिसा, समता, विश्वबन्धुता या विश्वमैत्री है ।"

"जो मनुष्य विविध जीवोकी हिंसामे अपना अनिष्ट देख सकता है, वही उसका त्याग करनेमें समर्थ हो सकता है । शान्तिप्रिय सयमी दूसरे की हिंसा कर जीना नही चाहते ।"

"हे पुरुष ! तू अपने ही साथ युद्ध कर, दूसरोंके साथ युद्ध करनेसे क्या ?"

"हे पुरुष तू ही तेरा मित्र है । बाहर क्यो मित्र खोजता है" ?

"जिसको तू मारता है, वह तू ही है । जिसको तू दवाना चाहता है, वह भी तू ही है । धर्मको ज्ञानी पुरुषोसे समझ कर, स्वीकार कर, सग्रह न करे, क्योकि परिग्रहके समान ससारमें दूसरा कोई वन्धन नही है ।"

ये ढ़ाई हजार वर्ष पुराने भगवान महावीरके विचार (उपदेश) सम्भवतः उस समय इतने आवश्यक नहीं थे, जितने आवश्यक आज है । आजके मानवका मन हिंसा और लोभकी समष्टि वना हुआ है । चारों ओर शान्तिकी पुकारें सुन कर ऐसा प्रतीत होता है—मानो समूची दुनिया शान्तिकी प्यासी है । किन्तु, उसके कार्यकलापोंको देख कर, 'सचमुच उसे शान्तिकी तड़प है, ऐसा अनुमान भी नहीं होता । आजके जीवनका उद्देश्य है—

भौतिक सुख समृद्धि। विकास और उन्नतिका अर्थ है—भौतिक पदार्थोंके नये-नये आविष्कार और उनकी प्रचुरता या सर्व सुलभता। आजका शिक्षित और सभ्य समाज पहले क्षण कहता है—"उत्पीडन मत करो, शोषण मत करो।" दूसरे वक्तव्यकी पंक्तियाँ होंगी—"हमारा जीवन-स्तर ऊँचा उठे, प्रत्येक व्यक्ति के पास मोटरकार, रेडियो आदि आधुनिक सभ्यताके सब साधन विद्यमान रहें—भौतिक सुख सुविधाओंकी प्रचुरता रहे।" देखनेमें दोनों भावनाएँ सुन्दर है। दोनोंका कलेवर भी आकर्षक है। तत्वदर्शी ऊपरी रङ्ग रूपमें मूर्छित नहीं होता और न उसे होना ही चाहिये। मैं मानता हूं कि विश्व-शान्ति सम्मेलनकी आयोजना इसी लक्ष्यसे हुई है। महात्मा गांधीके इङ्गितने इसका बीजारोपण किया। शान्ति-पूजा करनेवाले अन्यान्य देशीय व्यक्ति इसको पल्लवित करना चाहते है और डा० राजेन्द्रप्रसादकी अध्यक्षतामें इसका यह पहला सम्मेलन हो रहा है, यह भला किस शान्तिप्रिय-व्यक्तिके लिये हर्ष या उल्लासका विषय न होगा। हा, तो तत्वदर्शी पुरुष औपचारिक पद्धतियोंको, बाहरी रङ्गरूपोंको महत्व न देकर आन्तरिक स्थितिको ही महत्व देते हैं। उत्पीडन और शोषणका कारण भोग-लिप्सा है, भौतिक सुख सुविधाओंके प्रति होने वाली आसक्ति है। इनका अन्त करना चाहें तो मानव को सादा जीवन बिताना होगा, संयम अपनाना होगा। वर्तमान सभ्यताके रङ्गमें रङ्गी दुनिया यह सुननेको भी तैयार नहीं है कि भौतिक पदार्थोंकी उत्कट लालसा, भौतिक सुख सुविधाओंके प्रति प्रबल आसक्ति ही—इस अशान्तिका कारण है। महत्वाकाक्षाको उन्नतिका महान् साधन माना गया है। तब फिर आजकी शिक्षण पद्धतिमे अल्पेच्छा और आत्मनियन्त्रणका पाठ कैसे पढ़ाया जाय ?

अशान्तिका हेतु

इस समय समूचा विश्व उत्तरोत्तर अन्तर आहोंसे झुलसा जा रहा है, ग्लानि, क्लेश और वेदनाकी चिर अनुभूतिसे नीरस होता जा रहा है। इसका कारण है—जीवनकी आवश्यकताओंकी वृद्धि। आवश्यकताएं बढ़ती है, वहां उनकी पूर्तिके लिये आर्थिक लिप्सा बढ़ती है। आर्थिक लिप्सा बढ़ती है, तब शोषण बढ़ता है। शोषण चाहे व्यक्तिगत, जातिगत, और राष्ट्रीय कैसा ही हो—उससे संघर्ष और दुर्भावनाका जन्म हुए बिना नहीं रहता। सामग्री कम है, आवश्यकताएं उससे अधिक है, संग्रह अधिकतर है और संग्रहकी भावना असीम है। यह समस्या साधनोंके विस्तारसे सुलझने वाली नहीं। ज्यों-ज्यों साधनोंका और अधिक विस्तार होगा त्यों-त्यों आवश्यकताएं भी और आगे बढ़ती चली जावेंगी। फिर मानव इतना दिग्मूढ़ बन जायगा कि वह सही मार्ग पर पहुंच न सकेगा।

अशान्ति-निवारण

उक्त समस्याको सुलझानेका सबसे सरल और सबसे कठिन एक मात्र उपाय आत्म संयम ही है। उसके बिना आवश्यकता और साधनोंकी कमीका संघर्ष कालकवलित नहीं हो सकता। एक जाति, समाज या राष्ट्रकी भौतिक उन्नतिकी प्रतिस्पर्द्धा दूसरी जाति, समाज या राष्ट्रमें संक्रांत होती है, आत्म-संयमकी नहीं। कारण, भौतिक उन्नतिके भवनका निर्माण आसक्तिकी ईंटोंसे होता है। जहां आसक्ति है, राग-द्वेषका प्राबल्य है, और है तब ममका सीमातीत भेद, वहां उद्वेग है, संघर्ष है, दमन है, युद्ध है, अशान्ति है। लोभ-संवरणमें प्रवृत्तियोंका निरोध है, अनासक्ति है, अतएव उसके लिए प्रतिस्पर्द्धा नहीं होती, अशान्ति और युद्ध

नहीं होता। इससे हम बिना तोड़-मोड़ किये इस निष्कर्षपर पहुंच जाते हैं कि संयम हमारे जीवनकी सबसे बड़ी आवश्यकता है, सबसे बड़ी धनराशि है और वह प्रत्येक व्यक्तिकी अपनी निजी सम्पत्ति है। उसपर दूसरा कोई अधिकार नहीं कर सकता। उसमें ही हमारी शान्ति और सुखके बीज निहित हैं। बाहरी वस्तुएँ, भोगोपभोगके साधन हमारी निजी सम्पत्ति नहीं हैं। उनका संग्रह करनेके लिये—हम अशान्ति और युद्धका बवंडर खड़ा करते हैं और स्वयं ही उसका दुष्परिणाम भोगते हैं। युद्ध तलवारों, बन्दूकों, मशीनगनों और अणुबमोंमे नहीं है। वह मानवके दिल और दिमागमे है। मानव जब चाहते हैं तब लड़ाई का भूत खडा कर लेते है। इसीलिये गौतम स्वामीने कहा था—

"एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जियादस।
दसहाउ जिणित्ताण, सव्व सत्तू जिणामह॥"

एक मनको जीतता हूं—तब क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार शत्रुओं पर विजय पा लेता हूं। इनपर विजय पाते ही पांच इन्द्रियोंको जीत लेता हूं—इस प्रकार सब शत्रुओंको जीत लेता हूं।

तात्पर्य यह है कि मन ही सबसे बडा शत्रु है। "मन एव मनुष्याणा, कारण बधमोक्षयो।" अथवा "अप्पामित्तममित्त च, दुप्पठिअ सुप्पठिअ" अर्थात् सुप्रास्थित मन मित्र है और दुःप्रास्थित मन शत्रु है। अशान्ति और शान्तिका उपादान मन ही है। मनको शुद्ध और सरल बनाना आवश्यक है। यदि ऐसा हो जाय तो लाख अणुबमोंके होते हुए भी एक विस्फोट नहीं हो सकता। यदि सही अर्थमे सुख और शान्तिकी आकाक्षा है तो व्यक्ति-व्यक्ति आत्म संयमका अभ्यास करे, लोभ संवरण करे, आवश्यकताओंको कम करे।

लालसा और शांति

"हे धीर ! तू आशा और स्वच्छन्दताको त्याग दे । इन दोनों कांटोंके कारण ही तू भटकता रहता है । जिसे तू सुखका साधन समझता है, वही दुःखका कारण है ।" बाह्य पदार्थोंमे बन्धकर प्राणी सुख नहीं पा सकता । पिंजड़ा चाहे सोनेका हो, आखिर वह बन्धन ही है। आत्म व्यतिरिक्त पदार्थमे आसक्त होना वस्तुतः सुख नहीं । "सर्वं परवश दुःख, सर्वमात्मवश सुखम् ।" सुखकी अधिक लालसा भी सुखका कारण नहीं, प्रत्युत् दुःखका कारण बनती है । भौतिक मूर्च्छा एक प्रकारकी तन्द्रा है । मनुष्य जितना अधिक उसके अन्तरमे घुसता है, उतना ही अधिक भान भूल जाता है । सद् असद्का विवेक खो बैठता है । भौतिक साधनोंका अतर्कित विस्तार होनेपर भी सुख और शातिकी मांग बढ़ती जा रही है, क्या इससे हम यह नहीं जान सकते कि भौतिक पदार्थ सचमुच सुख शान्तिके साधन नहीं है। यदि होते तो आजका विश्व अशान्त क्यों कहा जाता ? इसलिए अब भी सम्भलना होगा। सुख और शान्तिके वास्तविक स्वरूपको पहचानना होगा ।

भावी समाजकी नींव

आजके समाज-निर्माता नव-निर्माणके तटपर खड़े है। वे प्राचीन शृङ्खलाओंको तोड़कर समाजको समृद्ध, सुखी और सम-स्थितिक बनाना चाहते हैं। उन्हें इससे पहले सुख और समृद्ध का स्वरूप जानना परम आवश्यक है। जिस समाजकी नींव हिंसा, और भौतिक लालसामय होती है वह साम्यकी स्थितिको रख नहीं सकता । पर-नियन्त्रण, पर-अधिकार-हरण, दमन और साम्राज्य-विस्तारकी भावनासे बच नहीं सकता । भौतिक पदार्थों

के बिना जीवनका निर्वाह नहीं होता, यह सुनिश्चित है। पर, आवश्यकताओंकी एक सीमा होती है, प्रयोजन होता है। जिस आवश्यकतासे दूसरेका अधिकार छीना जाता हो या उसमे बाधा पहुंचती हो, वह आवश्यकता नहीं रहती—अनाधिकार चेष्टा हो जाती है। अहिंसा, सत्य और अपरिग्रहकी भित्तिपर अवस्थित समाज चिर समृद्ध और चिर सुखी रह सकता है। उसे अपने नैतिक पतनका कभी सन्देह नहीं होता। आज ऐसे आध्यात्मिक समाज-रचनाकी आवश्यकता है जिसमें पैसेका महत्व नहीं, त्यागका महत्व रहे। प्रत्येक व्यक्ति अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहको आदर्श माने और इनको यथाशक्ति व्रतोंके रूपमें पालनेका प्रयत्न करे। न तो अमित व्यय हो और न अमित संग्रह। भोग साधनोंकी उत्कट लालसा न रखे। अनिवार्य आवश्यकताओंको भी क्रमशः कम करनेका लक्ष्य रखे। आत्म-नियन्त्रण, इन्द्रिय विजय और मनोविजयमें सफलता और उन्नतिका अनुभव करे। शान्ति और सद्भावनामे विश्वास रखे। अधिकार और पदका लोभ न करे और भौतिक प्रति स्पर्द्धा न रखे।

सुधारका केंद्र : व्यक्ति या समष्टि

कई व्यक्ति या वाद व्यक्तिगत उन्नतिसे समष्टिकी उन्नतिका विश्वास करते हैं और कई कहते हैं कि व्यक्ति व्यक्तिके सुधारसे समष्टिका सुधार सम्भव नहीं होता। समष्टिगत सुधार करनेसे व्यक्तिका सुधार तो अपने आप हो जाता है। खैर, मैं विवादमें जाना नहीं चाहता। सुधार व्यक्तिगत और जातिगत दोनों प्रकारके होते हैं फिर भी दोनोंकी स्थिति-एकसी नहीं होती। व्यक्तिगत सुधार हृदय परिवर्तनपूर्वक होता है, इसलिये वह स्थायी स्वतन्त्र और आत्मिक होता है। समष्टिगत सुधार बलात्कृत

होता है, इसलिये वह अस्थायी, परतन्त्र और अनात्मीय होता है। प्रारम्भिक शिक्षा और पारिपार्श्विक विशुद्ध वातावरणसे यह कार्य सरलतया सम्पन्न हो सकता है। एक एक व्यक्ति आध्यात्मिक शिक्षा पाता रहे तो समाज आध्यात्मिक बन सकता है। चाहे व्यक्ति सुधार माने, चाहे समष्टि-सुधार प्रणाली, कोई भी हो वस्तुतः लक्ष्य-वेध होना चाहिये। संयमकी शिक्षा मिलनी चाहिये, चाहे वह कैसे ही व्यक्ति या समष्टिके रूपमें क्यों न मिले ? इसके विना भौतिक पदार्थ सम्बन्धी प्रतिस्पर्द्धाका अन्त नहीं हो सकता। जब तक मानव-मानव भौतिक उन्नति को एक दौड़ मानते है—इससे पीछे रहनेमे अपना अपमान समझते है, वे आध्यात्मिक क्षेत्रमे—संयम-मार्गमे प्रवेश नहीं पा सकते। हमे जनताको भलीभांति यह समझाना होगा—उसके हृदयमें यह बात बैठानी होगी कि भौतिक दौड़मे आगे बढ़ना कोई बड़प्पन नहीं है। इससे अशान्ति और उत्तेजनाका प्रसार होता है। संयम प्रधान समाज अजेय होता है। उसे कोई परास्त नहीं कर सकता; संयमसे आत्मबलका विकास होता है। उससे अन्यायके प्रति असहयोगकी शक्ति उत्पन्न होती है। ऐसी स्थितिमे भौतिक शक्तियां कुछ भी कार्यकर नहीं हो सकती है। पहले पहल साधनामें कुछ कठिनाईका अनुभव होता है—चाकचिक्यपूर्ण दुनियासे सीधी सादी दुनियामे जा वसना सहज हो भी कैसे सकता है ? इन क्षणिक प्रदर्शनों एवम् दुःखद लिप्साओं का संवरण करनेवाला समाज अशान्तिसे उद्वेलित नहीं होता। "संयम ही सच्चा सुख और सच्ची शान्ति है"—कितना अच्छा हो यदि यह तत्व हृदयंगम हो जाय।

अपना वचाव, अपनी अनुकम्पा और अपनी सत्ताके लिये मनुष्य अधीर नहीं है। परानुकम्पी होनेसे पहले आत्मानु—

होना नितान्त आवश्यक है। आत्मानुकम्पी ही सही अर्थोंमें अपना सुधार कर सकता है। स्वयं सुधरे बिना दूसरेके सुधार की सोचना, कल्पनाकी उड़ानसे अधिक मूल्य नहीं रखता। इसको प्रत्येक व्यक्ति गहराईसे सोचे और समझे।

पारदर्शित्व

"आँखोंके सामने है, वही सब कुछ है। इस भींतसे परे क्या है, उसकी कोई चिन्ता नहीं। विपुल सुख सामग्री और कामभोग उपलब्ध हैं। कौन जाने परलोक है या नहीं? मिले हुए भोगों को छोड़ कर भविष्यके सुखोंकी पुलें बाँधना निरी अज्ञानता है" ऐसे विचार अनुपातरूपेण सौ में से पिचहत्तर व्यक्तियों के मिलेंगे। विद्या और तर्कका अभाव नहीं, दृष्टिकोणका विपर्यास है। कार्यकालकी ओर विचारोंका झुकाव है, परिणामकी ओर नहीं। कई विष फल स्पर्शमें कोमल, देखनेमे सुन्दर और खानेमें मधुर होते हैं पर, खानेका परिणाम होता है—मृत्यु। पदार्थकी अच्छाई या बुराई, उपयोगिता या अनुपयोगिताका मानदण्ड उसका विपाक होता है। जिसका विपाक अहितकर होता है वह आदर और श्रद्धाके योग्य नहीं होता। प्रारम्भ भले ही कटु हो, अन्तिम परिणाम सुन्दर होता है—वस्तुतः वही उपयोगी है। भौतिक साधनाओंके आरम्भकालमें शेखचिल्लीकी कल्पनाओंसे भी ज्यादा मिठास होता है, किन्तु अन्तमें पराजित सम्राटके हृदय जैसी कटु बन जाती है। संसारवासी भौतिक सुखोंसे सर्वथा विमुख बन जाय, यह आकाशदर्शन जैसी कल्पना है। फिर भी उनके लिये जो असीम दौड़ धूप, अनन्त आसक्ति है, वह उपादेय नहीं—यह सघन आवरण है—मजबूत घूंघट है। इससे पारदर्शनकी शक्ति नष्ट हो जाती है—घूघटसे परे की दुनियाका लोप हो जाता है। इसलिये आज सबसे पहले ऐसे

प्रयत्नोंकी आवश्यकता है जो इस पर्देको दूर कर सके। मनुष्य सृष्टा है। वह जैसा वातावरण पैदा करता है वैसी परिस्थिति बन जाती है। प्रत्येक शान्तिप्रिय मानवका कर्त्तव्य है कि वह वातावरणमें संयमका बीज बोवे।

द्विकर संयोग

समाज और राज्य दोनोंमें आध्यात्मिकता लानेकी आवश्यकता है। एकके अस्वास्थ्यका प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। समाज राज्यके नियमोंका हृदयसे पालन करे अथवा शासन अधिकारी स्वयम् अर्थ लोलुप बन कर अन्यायके पोषक बन जावें—इस दशामें अव्यवस्थाका प्रसार होता है। केवल समाज या केवल राज्यसे व्यवस्था नहीं होती। दोनोंके नीतिपूर्ण मानससे ही परस्पर स्वस्थ सम्बन्ध कायम हो सकते हैं। इसके लिये दोनोंको ही संयम, अहिंसा और अपरिग्रहका अभ्यास करना आयश्यक है। आज अन्न-वस्त्र नियन्त्रण व्यवस्थाके द्वारा कितना भ्रष्टाचार फैला हुआ है—इसका कारण क्या ? वही आध्यात्मिकताका अभाव। सबके सब संग्रहके लिये तुले हुए हैं—अशान्ति और अव्यवस्थाके अङ्ग बने हुए हैं। नियम-निर्माता नियमोंकी उपयोगिता एवम् चातुःपार्श्विक स्थितिका ध्यान न रखे उस स्थितिमें उनका प्रतिफल क्या होता है ? इसका सद्यस्क उदाहरण खाद्य आदि वस्तु नियन्त्रण और उसकी गोदमें पलनेवाला भ्रष्टाचार है।

शांतिके कुछ साधन

यदि निम्नलिखित सूत्रों पर जनता ध्यान दे—शान्ति लाभके लिये कुछ अपना बलिदान करे—तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि आत्मामें शान्तिका तार झनझना उठेगा—

१- समाज रचनाका मूल आधार सत्य और अहिंसा रहे।

२—अहिंसा दार्शनिक तत्वके रूपमें नहीं—आचरणके रूपमे स्वीकार की जाय।

३—पशुबलका मुकाबिला पशुबलसे न किया जाय।

४—अहिंसा और अपरिग्रहका वातावरण बनाया जाय (जनता उत्पादन बढ़ानेकी आवश्यकता अनुभव करती है, किन्तु अहिंसा और अपरिग्रहका वातावरण उत्पन्न करना सबसे महान् और सबसे आवश्यक उत्पादन है तथा उस उत्पादन की कमीको दूर करनेवाला है।)

५—अर्थ संग्रह न किया जाय, किसी प्रकारसे भी आर्थिक शोषण न किया जाय।

६—जीवनकी आवश्यकताओंका विस्तार न किया जाय, दूसरे की आवश्यकताओं पर अधिकार न किया जाय।

७—भौतिक सुख-सुविधाओंको प्राधान्य देने वाले तथा भौतिक शक्तियोंमें विश्वास रखनेवाले समाज, जाति या राष्ट्रसे प्रतिस्पर्द्धा न की जाय।

८—व्यक्ति व्यक्तिको संयम और आध्यात्मिकताकी शिक्षा दी जाय। भौतिक शिक्षाके विना गृहस्थ जीवनका औचित्यपूर्ण निर्वाह नहीं होता इस लिये सामाजिक प्राणी उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता, नियन्त्रण रखनेके लिये उसके साथ आध्यात्मिक शिक्षाका होना जीवनकी अनिवार्यतम आवश्यकता है।

९—अपना सिद्धान्त दूसरे पर जबरदस्ती न थोपा जाय। सैद्धान्तिक मतभेदोंके कारण अनुचित व्यवहार न किया जाय।

१०- राजनीतिक सत्ता या पद प्राप्तिका लोभ न रखा जाय।

११—प्रतिशोधकी भावनासे किसीको भी दण्ड न दिया जाय।

(क्योंकि चिकित्सा तुल्य दण्ड-विधि ही उचित मानी जाती है।)

१२—जातिगत या सम्प्रदायगत संघर्षोंको प्रोत्साह न दिया जाय।

१३—जिससे कम लाभ और अधिक अत्याचार हो ऐसे नियमों का निर्माण न किया जाय।

मैं नहीं मानता कि कोई भी मनुष्य अशान्ति चाहता है। सब सुख शान्तिके अर्थी हैं। समरभूमिको रक्त-रञ्जित करनेवाले सेनानी भी शान्तिके लिये लड़े—ऐसा कहा जाता है, सुना जाता है। यह क्या और कैसी शान्ति है? कुछ समझमे नहीं आता। अपनी शान्तिके लिये दूसरेकी शान्तिका अपहरण मत करो—यही सच्ची शान्ति है। क्षणिक शान्तिके लिये स्थायी शान्तिको खतरेमें मत डालो—इसका नाम है सच्ची शान्ति। शान्तिके लिये अशान्तिको उत्पन्न मत करो—यह है—सच्ची शान्ति। शान्तिके इच्छुक हो तो शान्तिके पथ पर चलो—यही सच्ची शान्तिका सही रास्ता है।

* *

*